# क्रान्ति का मूल स्रोत
# बालक


लेखक

बन्सीधर ( भाई साहब )

डाइरेक्टर, बालनिकेतन, जोधपुर

भूतपूर्व सम्पादक, हिन्दी-शिक्षण पत्रिका।



प्रकाशक

**रामनारायणलाल बेनीप्रसाद**

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद-२

द्वितीय आवृत्ति ] [ मूल्य २·५० रु०

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीप्रसाद
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद-२



मुद्रक
रामबाबू अग्रवाल
ज्ञानोदय प्रेस
इलाहाबाद-२

मानव जाति की फुलवारी

के

एकमात्र आशा कुसुम

बालक

के

नन्हें हाथों में

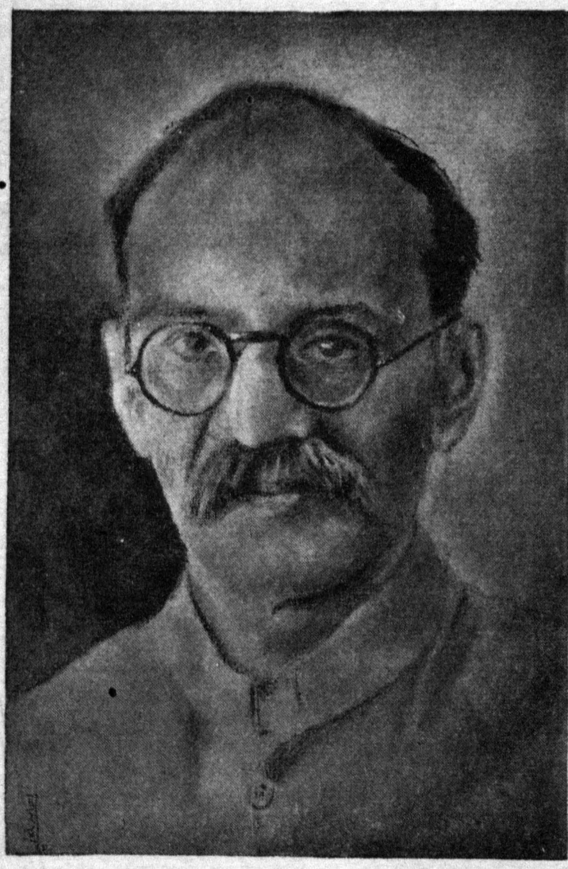
अर्पित

"बालक मानवजाति का निर्माता है ।"

—डा० मोन्टीसोरी



बालशिक्षण की प्रवर्तिका डा० मोन्टीसोरी



स्वतंत्र बालशिक्षण के आचार्य स्व० गिजुभाई

"जब तू प्रभु नहीं है, तो बालकों का प्रभु क्यों बनता है ?
जब तू सर्वज्ञ नहीं है, तो बालकों की अल्पज्ञता पर क्यों हँसता है ?
जब तू सर्वशक्तिमान नहीं है, तो बालकोंकी अशक्ति पर क्यों चिढ़ता है ?
जब तू सम्पूर्ण नहीं है, तो बालकों की अपूर्णता पर क्षुब्ध क्यों होता है ?
"पहले तू अपनी ओर देख, फिर अपने बालकों की ओर देख ।"

—*स्व० गिजुभाई*

# पुस्तक में क्या है ?

आज भारतवर्ष के ही नहीं अपितु समस्त संसार के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में भयानक उथल-पुथल मची हुई है। अपनी-अपनी क्रूर अभिलाषाओं की बलिवेदी पर अमीर गरीबों की, बलवान् निर्बलों की, बड़े छोटों की और अपनी सभ्यता का ढिंढोरा पीटने वाले असभ्यों की खुले आम निर्मम बलि चढ़ा रहे हैं। स्वार्थान्ध मानव आज दूसरों के हितों को रौंद कर उन्मत्त पशु की भाँति इठलाने में अपना गौरव समझता है। जातीयता और सभ्यता के नाम पर आये दिन डट कर खूनी होली खेली जाती है। फलतः चारों ओर भयानक अशान्ति, हत्याकाण्ड, लूट-खसोट, असन्तोष, अविचार, अनाचार आदि का बोलबाला है। सारांश यह कि मानव समाज की आज बड़ी भयावह स्थिति है।

मानव समाज को सुधारने के अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं। लेकिन नतीजा कुछ भी नहीं निकलता। धर्माचार्यों के तत्त्वज्ञानपूर्ण उपदेशों, धर्मशास्त्रों के पठन-पाठन और समाज के कर्णधारों के ओजस्वी भाषणों के बावजूद भी आज का मानव-समाज निरन्तर पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। आज के रोग-ग्रस्त और विकृत समाज को सुधारने का, ऊँचा उठाने का केवल एक ही साधन है और वह है—"बालक"। बालक की उपेक्षा करके ही हमने अपना यह सर्वनाश किया है। बालक को अपने स्वार्थ सिद्धि का साधन बना कर ही हमने दुनियाँ में अशान्ति फैलाई है, युद्धों को जन्म दिया है और खून की नदियाँ बहाई हैं। बालक को अपने विचरों के अनुसार चलने के लिये विवश करने के बजाय हमें उसके बताये हुए मार्ग पर चलना

होगा। बालक को अपना स्वयं विकास करने के लिये स्वतन्त्र वातावरण प्रस्तुत करना होगा। स्वतन्त्र वातावरण में पला हुआ बालक ही हमारी विविध राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जटिल समस्याओं को हल कर सकता है तथा सीधा और सरल रास्ता दिखा सकता है। इसलिये बालक के सम्बन्ध में अब हमारा मूल-मन्त्र यह होना चाहिये—"मैं नहीं, तू है।"

इस पुस्तक में बालक की अपरिमित शक्तियों और महत्ताओं पर प्रकाश डालते हुए यह दिखाने का नम्र प्रयास किया गया है कि शिक्षा, जीवन और विश्व-सम्बन्धी हमारी समस्त गुत्थियाँ बाल-मानस और बाल-विकास के अध्ययन एवं अनुशीलन से सहज ही में समझी और हल की जा सकती हैं। अतः यह पुस्तक केवल माता-पिता और शिक्षक के लिये ही नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक और लाभदायक है।

अन्त में मैं उन सब विद्वान और अनुभवी शिक्षा शास्त्रियों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने अनुभवपूर्ण लेख भेज कर मुझे मानव समाज के भावी नेता—बालक की सेवा करने का मौका दिया है। उनके सहयोग के बिना मैं इतनी जल्दी इतनी सुन्दर पुस्तक पाठकों के सामने उपस्थित नहीं कर सकता था। मैं उन सब महानुभावों को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिनके द्वारा इस पुस्तक में दिये गये सभी सुन्दर चित्र प्राप्त हुए हैं। मैं श्री धर्मपाल जी शास्त्री व श्री ओमप्रकाश जी मित्तल एम० ए० का भी आभारी हूँ, जिन्होंने अनुवाद आदि कार्य में सहायता की है।

अगर यह पुस्तक बालक के प्रति एक भी पाठक की मनोवृत्ति में परिवर्तन कर सकी, तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूँगा।

१-११-१९४६ सम्पादक

# इस संस्करण में सुधार

इस संस्करण में आद्योपान्त संशोधन कर दिया गया है। अशुद्धियों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक को अधिक उपयोगी व सुबोध बनाने के लिये प्रत्येक अध्याय में उपशीर्षक दे दिये गये हैं।

इसके अलावा "बालक के लिये कहानियाँ" एक नया अध्याय जोड़ा गया है, जिससे कहानियों के सम्बन्ध में पाठकों को एक नई दिशा, नई प्रेरणा मिलेगी।

पुस्तक के अन्त में पुस्तकों की एक नई सूची संलग्न कर दी गई है।

आशा है, बालक की अद्‌भुत शक्तियों को समझने में माता-पिता और शिक्षकों को इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिलेगी। बालक के प्रति उनका दृष्टिकोण स्पष्ट होगा तथा वे बालक को निर्बल व निःसहाय न समझकर उसे स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में देखने लगेंगे, जिससे उसका बड़ा विकास होगा, वह फलने-फूलने और खिलने लगेगा।

बालनिकेतन, जोधपुर<br>
दिसम्बर, १९६०

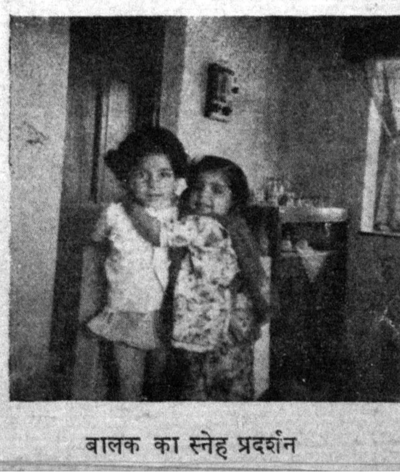
बन्सीधर

# विषय-सूची


| | | |
|---|---|---|
| १—क्रान्ति का मूल स्रोत-बालक | श्री बन्सीधर | १ |
| २—माता-पिता की जिम्मेदारी | श्री एस० पी० कनल बी० ए० आनर्स (लन्दन) | १६ |
| ३—बालक के प्रारम्भिक वर्ष | श्री जगदीशसिंह एम०ए० | ३६ |
| ४—घर में बालक का स्थान | स्व० श्री आचार्य गिजुभाई | ५८ |
| ५—बालक का वातावरण | श्री एस० लाल, एम० ए०, टी० डी० (लन्दन) | ७० |
| ६—स्वातन्त्र्य व स्वयं स्फूर्ति | श्रीमती ताराबेन मोडक | ७७ |
| ७—बाल-प्रवृतियाँ | श्री बन्सीधर | ८५ |
| ८—बालक के खेल खिलौने | श्री बन्सीधर | १०२ |
| ९—बालक की शिक्षा | श्री कृष्णाजसराय तथा श्री बन्सीधर | ११४ |
| १०—कामवृत्ति और बालक | श्री बन्सीधर | १२८ |
| ११—बालक और अनुशासन | श्री गुरुदयाल मल्लिक | १४३ |
| १२—सजा, इनाम और होड़ | श्री बन्सीधर | १५१ |
| १३—बालक के लिये कहानियाँ | श्री बन्सीधर | १६४ |
| १४—बाल-गीता | श्री बन्सीधर | १७८ |
| १५—माता-पिता व शिक्षकों के लिये पुस्तकें व पत्र | | १८३ |
| १६—Books for Parents and Teachers in English | | १८५ |
| १७—बाल-विकास के लिए साधन—सामग्री मँगवाने का पता | | १८६ |



बालक जानवरों की तस्वीरों का गहराई से
निरीक्षण कर रहा है



बालक का स्नेह प्रदर्शन

# क्रान्ति का मूल स्रोत—बालक

## चारों ओर स्वतन्त्रता की माँग

आज दुनिया के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक स्वतन्त्रता की लहर दौड़ गई है। जहाँ-तहाँ उथल-पुथल मची हुई है। जहाँ जाओ, जहाँ देखो, सभी जगह स्वतन्त्रता की चर्चा है। परतन्त्रता और परवशता का जुआ उतार फेंकने के लिये सभी कटिबद्ध दिखाई देते हैं। व्यक्तित्व को नष्ट करने वाली पाबन्दियों और बन्धनों से सब ऊब गये हैं। अन्याय, अत्याचार, अपमान, अनादर सहन करने के लिये कोई तैयार नहीं है। सदियों से पद-दलित और पीड़ित जातियाँ अपनी कुम्भकर्णी नींद से जाग रही हैं। घर की चहारदीवारी में बन्द रहने वाली स्त्रियाँ भी अपने अधिकारों के लिये जद्दोजहद कर रही हैं। परदे और बुरके में बन्द न रह कर वे भी अपना उत्थान और विकास करना चाहती हैं। युवक भी बड़ों के चंगुल से छुटकारा पाने के लिये संगठित हो रहे हैं। भेड़-बकरी का-सा जीवन बिताने वाले सीधे-सादे किसान-मजदूर भी हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठे हैं। अपनी स्वाधीनता के लिये वे भी प्रयत्नशील हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये सभी सिर-धड़ की बाजी लगा रहे हैं। अब अधिक समय तक कोई किसी को गुलाम बना कर नहीं रख सकता। हाँ में हाँ मिलाने और 'जी हजूरी' का युग अब बीत गया।

## स्वतन्त्रता से वंचित बालक

लेकिन बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि बालक की स्वतन्त्रता का सवाल जब हमारे सामने आता है, तो हम आँखें दिखाने लगते हैं,

नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, जैसे बालक का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह कितने आश्चर्य और लज्जा की बात है कि जिस बालक को हम अपना सर्वस्व मानते हैं, जिसके लिये हम भारी से भारी त्याग कर सकते हैं, उसकी स्वतन्त्रता का हम विचार ही नहीं करते ! बालक के साथ इतना अन्याय ! इतना जुल्म !

## घर में बालक का अपमान

बालक को हम आज भी निर्बल, निस्तेज, तुच्छ और हीन समझते हैं। उसकी इच्छाओं, आवश्यकताओं और सुविधाओं का हम जरा भी ख्याल नहीं करते। उसकी रुचि-अरुचि की ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। उसे कठोर नियन्त्रण और अनुशासन में रखते हैं। उसे किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं देते। न वह आजादी से घूम-फिर सकता है और न आजादी से खा-पी सकता है। उसे रात-दिन बड़ों के आदेशों और इशारों पर कठपुतली की तरह नाचना पड़ता है, बिना चूँ-चरा के उनकी जा-बेजा सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता है। बड़ों के खिलाफ मुँह खोलना अक्षम्य अपराध समझा जाता है। घर में बालक की कोई आवाज नहीं, कोई अधिकार नहीं, कोई राय नहीं। बड़ों की हाँ में हाँ मिलाना मानो बालक का परम कर्तव्य है। जरा-सी गलती हो जाने पर बालक पर आफत का पहाड़ टूट पड़ता है। बुरी तरह फटकार पड़ती है, चपतें लगती हैं। ऐसी दशा में आदर-सत्कार की तो बात ही क्या ? उफ ! घर में ही बाल-देवदूत की यह दुर्दशा ! इतना अपमान !

## शाला में बालक की दुर्दशा

शाला में भी बालक को कोई राहत नहीं मिलती। वहाँ तो बालक की घर से भी बुरी दशा होती है। उसकी कल्पना करके तो रोमांच हो आता है। आज की शाला बालक के लिये नहीं, बल्कि बालक शाला

के लिये है। वहाँ शिक्षक का ही बोलबाला है, वही सत्ताधीश है। रटा-रटा कर बालक का दिमाग खराब कर दिया जाता है। पाठ समझ में आये चाहे न आये, बेचारे बालक को शिक्षक के डण्डे से अपनी जान बचाने के लिये किसी न किसी तरह तोते की तरह रटना ही पड़ता है। अगर कहीं सबक याद नहीं हुआ तो मार-मार कर बालक का कचूमर निकाल दिया जाता है। "गुरु जी की चोट और विद्या की पोट" शाला की सर्वोत्तम शिक्षा-प्रणाली है। ठूँस-ठूँस कर बालक के दिमाग में ज्ञान भरना शिक्षक अपना परम कर्तव्य समझते हैं। मेरे प्रिय मित्र धर्मपाल शास्त्री के शब्दों में आज के शिक्षक का मूल-मन्त्र यह है—

"भरो ठोंक कर, ठूँस-ठूँस कर भर पाओ जितना भी।
बच्चों के मस्तिष्क न खाली रहने पायँ जरा भी।।
अखिल विश्व के ज्ञान-कोष से बालक रहें न वञ्चित।
कौन काम आयेगा शिक्षक! ज्ञान तुम्हारा सञ्चित।।"

ऐसी प्राणघातक शाला में बालक क्या खाक अपना विकास कर सकता है! यह शाला नहीं जेलखाना है, जहाँ बालक का दम हरदम घुटता रहता है।

## समाज में बालक की उपेक्षा

घर और शाला की तरह समाज में भी बालक के लिये कोई स्थान नहीं। समाज में सब के लिये नियम-कायदे बनते हैं, लेकिन बालक के लिये कोई नियम-कायदा नहीं। उसे माता-पिता और शिक्षकों की दया पर छोड़ दिया गया है। वही उसके भाग्य-विधाता हैं। यही कारण है कि बालक संसार का विस्मृत व पद-दलित नागरिक है। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि बालक के महत्त्व को हमने समझा ही नहीं। मुझे यह कहते जरा भी संकोच नहीं होता कि मानव-समाज की

आज जो अधोगति हो रही है, उसका मुख्य कारण बालक के साथ किया जाने वाला हमारा दुर्व्यवहार है। गड्ढे में पड़े हुए मानव-समाज को अनुप्राणित करने का केवल एक ही उपाय है और वह है बालक। यदि मानव-समाज को उन्नति के शिखर पर आरूढ़ करना है, दुनिया में शान्ति स्थापित करनी है, तो हमें बालक को समझना होगा, उसका सम्मान करना होगा।

## अद्भुत शक्ति का भंडार—बालक

बालक विपथगामी, नासमझ और निर्बुद्धि नहीं है। बालक कोरा कागज, खाली बर्तन या मिट्टी का ढेला भी नहीं है जिसे हम जैसा चाहें बना सकें। बालक अद्भुत शक्तियों का भण्डार है, सद्गुणों की खान है। उसकी शक्तियों और गुणों की कोई मर्यादा या सीमा नहीं है। मिस्टर होम्स ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि "प्रत्येक नव-जात शिशु में ईसामसीह छिपा हुआ है। मनुष्य जन्म से ही खराब होने के बदले जन्म से ही ईश्वर बनने की शक्ति लेकर पैदा हुआ है।" विद्वानों, विचारकों, तत्ववेत्ताओं, शिक्षा-शास्त्रियों और मानस-शास्त्रियों ने मुक्त-कण्ठ से बालक की प्रशंसा की है और उसकी महिमा का बखान किया है। प्राचीन काल के एक महान् आचार्य ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि "यदि कोई व्यक्ति इन नन्हों पर अत्याचार करता है तो चक्की का पाट गले में डाल कर उसे समुद्र में डुबो दिया जाय।"

## बालक एक स्वतन्त्र व्यक्ति है

बालक एक स्वतन्त्र व्यक्ति है। अपना विकास आप करने की उसमें शक्ति है। जान लॉक लिखता है—"बालक भी हमारी तरह स्वतन्त्र है। जिस तरह बड़े-बूढ़े स्वतन्त्र हैं, उसी तरह बालक भी स्वतन्त्र है। वह जो कुछ अच्छा करता है सो सब अन्तःस्फूर्ति से ही करता है। वह स्वाधीन और सम्पूर्ण है। आपको जो पसन्द हो वह

अगर बालक को पसन्द न हो, उसमें उसकी रुचि न हो, तो वह काम उससे कभी न करवाइये। सिखाने के विषयों की अपेक्षा सीखने वाले का महत्त्व अधिक है। क्या सीखना और क्या न सीखना, इसका निर्णय सीखने वाले को ही करना चाहिये, सिखाने वाले को नहीं। बच्चे का रहनुमा बनने की अपेक्षा उसका अनुकरण करने वाले बनो।" रूसो के शब्दों में—"जन्म से मनुष्य सदैव स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता मनुष्य का लक्षण है। पूर्ण मनुष्यत्व उसमें है जो दूसरों के दिये हुए प्रमाणों या सम्मतियों से आन्दोलित हुए बिना स्थिर रहता है, अपनी ही आँखों से देखता है, अपने ही हृदय से अनुभव करता है और जो केवल स्वतन्त्र प्रजा का ही अधिकार स्वीकार करता है। इसलिये शिक्षा का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपना स्वाभाविक विकास कर सके और जीवन के चाहे जैसे विकट बाह्य प्रसंगों में भी केवल अपनी वृत्ति का अनुकरण करके जीवन बिता सके। अतः बालक पर शारीरिक, बौद्धिक, किसी भी प्रकार का दबाव हमें नहीं डालना चाहिये। उसे जो कुछ भी सीखना है, वह जीवन और प्रवृत्तियों से सीखना है। ऊपर से उस पर हम कुछ लाद नहीं सकते।" जान लॉक और रूसो की तरह बाल-शिक्षा के प्रवर्तक पेस्टेलाजी और फ्रूबेल ने भी बालक के महत्त्व पर खूब प्रकाश डाला है। दोनों ही बाल-देवता के पुजारी थे। बाल-सेवा ही उनके जीवन का ध्येय बन गया था। एक दुनियादार के सवाल का जवाब देते हुए पेस्टेलाजी ने कहा था—"जी हाँ, मैं बच्चा ही हूँ और मरते दम तक बच्चा ही रहना चाहता हूँ। आपको क्या बताऊँ कि बालक बने रहने में दिल को कैसी राहत मिलती है।" फ्रूबेल का भी यही हाल था। बालक पर होते अत्याचार को देख कर आप रो पड़ते थे। किन्डर गार्टन पद्धति का आविष्कार आपने ही किया था। बालक का अपमान आप सहन नहीं कर सकते थे। आप कहा करते थे कि बालक गुण्डा और शैतान नहीं होता। अगर बालक में कोई बुराई

है तो उसके लिये बालक नहीं, बड़े जिम्मेदार हैं। गाँधीजी के बाल-प्रेम को कौन नहीं जानता। आपने एक बार लिखा था कि बालक स्वभाव से ही निर्दोष, उदार और प्रेमी होता है। उसकी शरारत में भी निर्दोषिता होती है। स्व० कविवर रवीन्द्रनाथ तो बालकों पर लट्टू ही थे। डाक्टर मोन्टीसोरी से बातचीत करते समय उन्होंने एक बार कहा था—"अब मैं बाल-गृह में प्रवेश करना चाहूँगा, क्योंकि वह स्रोत है, नींव है।"

## डॉ० मोन्टीसोरी द्वारा बालक का गहराई से निरीक्षण

आज तो बालक का और भी गहराई से निरीक्षण और अध्ययन किया जा रहा है। उन्नतिशील देशों ने बालक के महत्त्व को खूब समझ लिया है। बालक के विकास के लिये वहाँ दिल खोल कर रुपया खर्च किया जाता है। अनुसन्धान के लिये प्रयोगशालाएँ खुल रही हैं। बड़े-बड़े मानस-शास्त्री बाल-मानस के अध्ययन में लगे हुए हैं। बालक के विषय में उन्होंने जो खोजें की हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और आश्चर्य-पूर्ण हैं। जगत-विख्यात डाक्टर मोन्टीसोरी ने इस दिशा में जो काम किया है, वह बाल-शिक्षा और बाल-विकास के इतिहास में सदा अमर रहेगा। इन्होंने बालक का गर्भावस्था से लेकर सूक्ष्म निरीक्षण किया है। बालक कैसे बढ़ता है, कैसे वृद्धि पाता है, इस बीच में वह क्या-क्या क्रियाएँ करता है और किस प्रकार अपना विकास करता है आदि बातों का शास्त्रीय ढंग से पूर्ण अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप उनके बालक-विषयक विचारों में अद्भुत परिवर्तन हुआ। बालक से वह इतना प्रभावित हुई कि उन्होंने अपना सारा जीवन ही बाल-सेवा में लगाने का निश्चय कर लिया और अंत तक अपने निश्चय पर अडिग रहीं। उनके नवीन और क्रान्तिकारी विचारों ने शिक्षा-जगत् में भूकम्प-सा पैदा कर दिया, खलबली मचा दी। उनका कथन है कि बालक अपने आस-पास की दुनिया को जानने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये जन्म से ही उत्सुक

रहता है। इस आयु में (जन्म से छः साल तक) ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति भी बालक में अत्यन्त प्रबल होती है। स्वयं ज्ञान-प्राप्ति के लिये बालक बिना थके, बिना परेशान हुए, बिना दबाव के, बिना बाह्य नियन्त्रण के, खुशी-खुशी अगाध परिश्रम किया करता है। सोने के समय को छोड़ कर वह हर समय किसी न किसी प्रवृत्ति में लगा ही रहता है। स्वतन्त्र रूप से प्रवृत्ति करते रहना बालक का प्राण है। पढ़ाई के विषयों का चुनाव भी वह स्वयं ही करता है। बालक का स्वभाव प्रगतिशील है। वह सदा पूर्णता की ओर जाता है। बालक एक महान सन्देश लेकर जन्म लेता है। उसे पूर्ण मानव बनना है।

## बालक मानव-जीवन की नींव है

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाल्य-काल मानव-जीवन का सर्वोत्कृष्ट समय है। बाल-जीवन मानव-जीवन की नींव है। जैसे बीज से वृक्ष का निर्माण होता है, उसी प्रकार बीज रूपी बालक में से मनुष्य रूपी वृक्ष का निर्माण होता है। जैसे सभी जीवित प्राणियों में सम्पूर्णता छिपी रहती है, उसी प्रकार बालक में भी जन्म से ही मनुष्यत्व मौजूद रहता है जो प्रत्येक मनुष्य का आदर्श है। सचमुच बालक महान् व्यक्ति है। मनुष्य में जो भी शक्तियाँ पाई जाती हैं उन सब का निर्माण बालक ही करता है। निर्माण करने की बालक में गजब की शक्ति है। गर्भ में ही बालक निर्माण-कार्य में लग जाता है। फिर जन्म से छः साल तक निर्माण करते-करते वह पूर्ण मनुष्य बन जाता है। शून्य से पूर्ण मनुष्य बनने की शक्ति प्रकृति ने बालक को ही दी है। मनुष्य बहुत कुछ कर सकता है। हवाई जहाज बना सकता है, मशीनगनें तैयार कर सकता है, अणु बम का आविष्कार कर सकता है और भी अनेक प्रकार के चमत्कार कर सकता है, लेकिन मनुष्य का निर्माण करने में वह सर्वथा

असमर्थ है। यह शक्ति केवल बालक में ही है। इसी में बालक की महानता है। इसीलिये बालक मानव-जगत् का निर्माता है।

## बाल्य-काल के प्रथम छः सालों का महत्त्व

बाल-जीवन के प्रथम छः साल बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। ये वे साल हैं जिनमें बालक का जीवन बन सकता है या बिगड़ सकता है। जेसुएट धर्म का एक पादरी कहा करता था—"शुरू के छः सालों तक बालक को मुझे सौंप दो। इसके बाद जहाँ उसकी इच्छा हो उसे जाने दो।" विज्ञान की नवीनतम खोजों ने सिद्ध किया है कि इन छः सालों में भी प्रथम वर्ष सब से अधिक महत्त्व का है। बर्ट्रेंड रसल का कथन है कि—"प्रथम वर्ष में बालक जितना विकास करता है, उतना विकास वह अपने सारे जीवन में नहीं कर सकता।" प्रणाली-विज्ञान-वेत्ता कर्ल के अनुसार बालक दो या तीन वर्ष की आयु में जितना ग्रहण करता है, उतना मनुष्य ६० वर्ष की आयु में भी ग्रहण नहीं कर सकता। एक जापानी शिक्षा-शास्त्री ने भी इन्हीं विचारों का समर्थन किया है। वह लिखता है कि—"तीन वर्ष की आयु में बालक में जो स्पिरिट भर दी जाती है, वह सौ साल तक कायम रहती है।" डाक्टर मोन्टीसोरी ने भी प्रथम तीन वर्षों को बहुत महत्त्वपूर्ण बताया है। वे लिखती हैं कि—"प्रथम वर्ष में बालक इतनी तेजी से प्रगति और विकास करता है कि तीन साल की समाप्ति पर विकास की दृष्टि से वह वृद्ध हो जाता है। इतना महत्त्वपूर्ण है बाल-जीवन का प्रथम वर्ष !"

एक साल की इस आयु में बालक अपने आस-पास की सभी चीजों को जानने-पहचानने लगता है। व्यवस्था का भी इस समय बालक को बड़ा ध्यान रहता है। सब चीजों को वह यथास्थान देखना चाहता है। जरा-सी भी अव्यवस्था से वह हैरान-परेशान हो जाता है। दो साल की आयु में बालक का ध्यान इतनी सूक्ष्म चीजों की ओर जाता है कि जिसकी



बच्चे पालतू पशुओं से खेल रहे हैं



बच्चे संगीत के साथ अभिनय कर रहे हैं

हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इस समय बालक की दृष्टि बड़ी पैनी होती है।

## बालक में अपने विकास के लिए उत्सुकता

इस समय काम करने के लिये बालक बड़ा उत्सुक रहता है। अपने अज्ञान के कारण हम उसे काम करने का अवसर न देकर उसके विकास में बाधा डालते हैं। इस समय काम करने की बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। काम करते-करते तीन साल तक बालक अपना शारीरिक और मानसिक विकास पूरा कर लेता है। शेष तीन सालों में प्राप्त शक्तियों को बढ़ाता है। यह सब कुछ बालक स्वयं ही अपने परिश्रम से करता है। इसके लिये बालक को केवल उपयुक्त वातावरण चाहिये और आवश्कता पड़ने पर आवश्यक सहायता, और कुछ नहीं। विकास का काम बच्चे को ही करने देना चाहिये। अगर वह ऐसा नहीं करता तो उस काम को बिना किये ही छोड़ देना चाहिये। बालक को खुद ही अपनी शक्तियों और इन्द्रियों का उपयोग करना चाहिये। जो शक्तियाँ बच्चों का विकास करती हैं, वे उसके अन्दर से ही पैदा होती हैं। इन शक्तियों का पुष्ट करना, काम में लाना और विकसित करना सिवाय बालक के और किसी का कर्तव्य नहीं है। यह बात सदा याद रखने की है कि जो कुछ बालक सीखता है वह स्वयं सीखता है और कोई उसे सिखा नहीं सकता। भाषा इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

## बालक वातावरण से भाषा सीखता है

बालक को भाषा कौन सिखाता है? बालक को भाषा कोई नहीं सिखाता। वह स्वयं अपनी प्रकृतिदत्त शक्ति से, वातावरण से भाषा ग्रहण करता है। यह बात बिल्कुल गलत है कि बालक माँ से भाषा सीखता है। यदि यह बात सही होती तो नवजात शिशु की माता के मर जाने पर बालक सदा गूँगा ही रहता। लेकिन ऐसा होता नहीं। पहले बालक कुछ

खुले शब्द बोलने लगता है। यह सब कुछ स्वाभाविक रूप से होता है। बालक अनेक प्रकार की ध्वनियों को सुनता है। लेकिन आश्चर्य यह है कि इन सब आवाजों में से बालक केवल मनुष्य की आवाज को ही ग्रहण करता है! ढाई वर्ष की आयु में बालक खूब बोलता है। पाँच वर्ष की आयु तक व्याकरण-सहित भाषा को बालक सीख जाता है। इसके लिये बालक को किसी भाषा-शास्त्री या व्याकरणाचार्य की जरूरत नहीं पड़ती। अन्दाज लगाया गया है कि सुसंस्कृत वातावरण में पला हुआ बालक पाँच वर्ष की आयु में तीन हजार शब्द और छः साल की आयु में पाँच हजार शब्द सीख जाता है। नये-नये शब्द सीखने के लिये बालक बड़ा ही उत्सुक रहता है। इस समय में बालक खेल-खेल में कठिन से कठिन भाषा को सीख जाता है। बालक ही भाषा को जीवित रखता है। यदि बालक में यह शक्ति न होती तो एक पीढ़ी में ही भाषा का अन्त हो जाता। भाषा सीखने का काम एक निर्धारित समय में ही होता है जिसे सम्वेदनकाल कहते हैं। साढ़े पाँच और छः वर्ष की आयु में भाषा की सम्वेदनशीलता कम हो जाती है। इस समय भाषा ग्रहण करने का उत्साह बालक में उतना नहीं रहता जितना कि सम्वेदनकाल में होता है।

## लेखन शिक्षा के लिए पूर्व तैयारी की जरूरत

भाषा की तरह बालक लिखना भी सरलता से सीख जाता है। हाँ, लेखन के लिये पूर्व तैयारी की जरूरत है। लिखना सीखने के लिये तीन से छः साल का समय उपयुक्त है। आठ और नौ वर्ष के बालक में लिखने की शक्ति या उत्साह बिल्कुल नहीं रहता।

## बाल-जीवन में संवेदन-काल का महत्त्व

सम्वेदनकाल विकास के लिये बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। इस समय बालक की जिज्ञासा बड़ी तीव्र होती है। वह नित नई बात जानना और सीखना चाहता है। सीखने की उसकी भूख बढ़ती ही रहती है। इस

पर किसी भी प्रकार से नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। परन्तु इसके विपरीत मनोवैज्ञानिकों का एक दूसरा समुदाय है, जो उतनी ही दृढ़ता से विश्वास करता है कि बच्चे के वातावरण का उचित ध्यान रखना ही पर्याप्त है, तथा उसका पालन-पोषण ही उसे अच्छा मनुष्य बनाने में सहायक होता है। यदि बच्चे का विधिपूर्वक पालन किया जाय तो उसकी उन्नति अवश्यम्भावी है, और वंश-परम्परा की कोई शक्ति उसमें बाधा नहीं डाल सकती। कुछ भी हो, इतना तो निश्चित है कि बच्चे के माता-पिता अथवा शिक्षक उसकी वंशगत विशेषताओं में कुछ विशेष हस्तक्षेप नहीं कर सकते। अतएव उनके लिये तो बच्चे का वातावरण मुख्य है।

## वातावरण का उद्देश्य

बच्चे की उन्नति द्विमुखी होती है। अतएव वातावरण का उद्देश्य भी दुहरा होना चाहिए—शारीरिक और मानसिक उन्नति। परन्तु इसके पूर्व कि हम बच्चे के लिये आवश्यक वातावरण के प्रश्न पर विचार कर सकें, हमें यह न भूलना चाहिये कि वातावरण सदैव बच्चे की आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिये। इसलिये पहले बच्चे की विशेषताएँ जान लेने के बाद उनके अनुसार ही उसकी आवश्यकताओं पर विचार करना चाहिये। बच्चा एक विकासशील प्राणी है। उसके अन्दर बेहद शक्ति है, जिसके बिना वह उतनी अधिक उन्नति नहीं कर सकता, जो बचपन में आवश्यक है। उदाहरण के लिये अपने प्रथम वर्ष में बच्चा जितनी सर्वतोन्मुखी उन्नति करता है, वह एक ऐसी घटना है, जो उसके बाद के जीवन में नहीं पाई जाती।

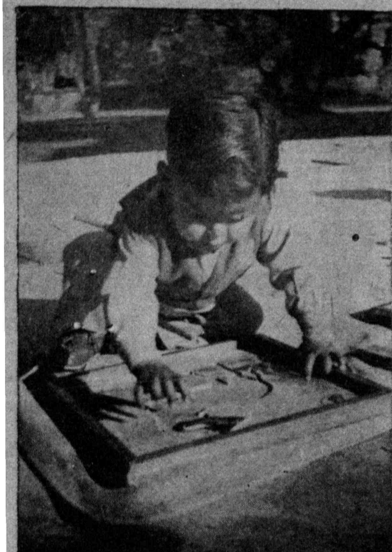
घोर अन्धकार से निकल कर बच्चा इस संसार में आता है—रुग्ण और कमजोर अवस्था में। उस समय उसे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता, तथा सब प्रकार से वह एक अत्यन्त दयनीय स्थिति में होता है। परन्तु एक वर्ष में ही वह बैठना, खड़ा होना तथा चलना-फिरना सीख

जाता है। इतना ही नहीं, वह उन मनुष्यों और पदार्थों को पहचानने भी लगता है, जो उनके पास में रहते हैं। छोटा-सा बच्चा व्यवस्था को पसन्द तथा अव्यवस्था को नापसन्द करने लगता है, और अपनी दृढ़ता भी दिखाने लगता है। इतने थोड़े समय में इतनी अधिक उन्नति होना कोई साधारण बात नहीं है। हमको इस ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिये, तथा उसके लिये वातावरण प्रस्तुत करते समय यह विशेष रूप से देख लेना चाहिये कि यह उसकी उन्नति में पूर्ण सहायता पहुँचाता है या नहीं।

बच्चे की दूसरी प्रमुख विशेषता पुनरावर्तन है। इसका सम्बन्ध भी पूर्वोक्त बात से ही है। बच्चे का क्षेत्र बहुत सीमित है, क्योंकि संसार और संसार के पदार्थों के बारे में उसका ज्ञान अभी बहुत थोड़ा होता है, परन्तु उसकी शक्ति अपरिमित है। डाक्टर मांटीसोरी ने बालक की इस प्रकृति के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण दिये हैं, तथा बच्चों के लिये उन्होंने जो साधन बनाये हैं, उनकी उपयोगिता भी अच्छी तरह सिद्ध की है। लेकिन हम यह नहीं मानते कि मांटीसोरी के ये साधन इस विषय में आखरी वस्तु हैं तथा अब इस विषय में उन्नति के लिये और अवकाश ही नहीं। पर इतना हम अवश्य महसूस करते हैं कि यह वास्तविक दिशा में किया गया एक प्रयत्न है।

## उपदेश की अपेक्षा अमल करके दिखाइए

बच्चे के लिये उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करते समय एक और बात का ध्यान रखना चाहिये। बालक अपने ज्ञान की प्राप्ति और वृद्धि सदा अनुकरण द्वारा करता है। अतएव बच्चों से व्यवहार करते समय हमारा सिद्धान्त उपदेश देना न होना चाहिये, वरन् स्वयं अपने कार्यों द्वारा वह उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि हमारा बच्चा विनयशील हो, तो हमको भी विनयशील होना चाहिये; यदि हम उसे सत्यप्रिय बनाना चाहते हैं तो हमें सत्यप्रिय होना पड़ेगा; यदि हम उसमें



बालक तसवीर के टुकड़ों को जोड़ कर
पूरी तसवीर जमा रहा है



बालक पालिश कर रहे हैं

वीरता के लक्षण देखना चाहते हैं तो हमें वीर होना चाहिये। किसी भी प्रकार की जबरदस्ती अथवा उकसाहट, दण्ड का भय या इनाम का लालच, उपदेश अथवा ताड़नाएँ बच्चे को वैसा नहीं बना सकतीं, जैसा हम बनाना चाहते हैं। हमने देखा है कि शिक्षक स्वयं तो स्कूल में लेट आते हैं, किन्तु लड़कों से समय पर आने की आशा करते हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है!

## बालक का व्यवस्था प्रेम

ऊपर लिखी बातों के अतिरिक्त एक और बात है जो बच्चे के वातावरण से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है! यह बच्चे का व्यवस्था-प्रेम है। बाल्य-जीवन की यह एक ऐसी विशेषता है, जिस पर यथोचित ध्यान नहीं दिया जाता। डा० मांटीसोरी ने इस विशेषता*का उदाहरण देते हुए एक विचित्र घटना का उल्लेख किया है। एक दो वर्ष का बच्चा बहुत जोर से रो रहा था। बच्चे को चुप करने के समस्त साधन बेकार गये

*बालक की एक और बड़ी विशेषता है—स्वातन्त्र्य। जन्म से ही बालक स्वतन्त्रता-प्रिय होता है। स्वतन्त्रता बालक का प्राण है। स्वतन्त्र वातावरण जादू का असर रखता है। लन्दन के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री मि० ए० एस० नील के स्कूल में प्रायः जटिल प्रकृति के बालक ही दाखिल होते हैं। शुरू-शुरू में ये बालक बड़ा ऊधम मचाते हैं, तोड़-फोड़ करते हैं, जरा पढ़ कर नहीं देते, शिक्षकों को बड़ा तंग करते हैं। लेकिन धीरे-धीरे स्वतन्त्र वातावरण के प्रभाव से प्रायः सभी बालक सुधर जाते हैं। झूठ बोलना, चोरी करना, गाली देना आदि दुर्गुणों को बिना किसी के कहे-सुने, खुद-बखुद छोड़ देते हैं। मि० होमरलेन के बाल-सुधार गृह में भी ऐसा होता था। सुधार-गृह के स्वतन्त्र वातावरण में रहते-रहते अपराधी बालक अपराध करना छोड़ देते थे। रूस में आजकल यही हो रहा है। सचमुच स्वतन्त्र वातावरण में शैतान भी फरिश्ता बन जाता है। इसके विपरीत दूषित वातावरण में फरिश्ते के भी शैतान बन जाने की सम्भावना है।

—सम्पादक

और किसी भी प्रकार कोई उसके रोने का कारण न जान सका। बाद में एक मेज पर रखी हुई एक छतरी वहाँ से हटाते ही बच्चा तत्काल चुप हो गया। बात यह थी कि बच्चा मेज पर रखी हुई उस छतरी के दृश्य को देख नहीं सकता था, क्योंकि छतरी वहाँ पहले कभी नहीं रखी गई थी।

## व्यक्तिगत वातावरण

बालक का वातावरण दो प्रकार का हो सकता है—व्यक्तिगत और पदार्थगत। यदि बच्चे के पास रहने वाले व्यक्ति बालमनोविज्ञान को जानते हैं, तो उनका व्यवहार ऐसा होगा जो बच्चे की उन्नति में सहायक हो। जैसा कि डा० मांटीसोरी ने कहा है कि गुलामी की प्रथा का अन्त होने के बाद मनुष्यजाति के सबसे बड़े अपराध बच्चों के प्रति हुए हैं। और मजा यह है कि फिर भी शिक्षक और माता-पिता सदा बच्चे के प्रति अपने पूर्ण प्रेम का दावा करते हैं। हमें उनके प्रेम में सन्देह नहीं है, परन्तु अज्ञान के कारण बच्चों के रक्षक ही उनके कट्टर शत्रु बन जाते हैं। यहाँ पर एक उदाहरण देना उचित होगा। यदि कोई माता-पिता आपस में सदैव झगड़ते रहते हैं, तब वे यह आशा किस प्रकार कर सकते हैं कि उनका बच्चा शान्त एवं मृदुल स्वभाव का होगा। बड़ों को चाहिये कि बच्चों के सामने पूर्ण आदर्श उपस्थित करें। बच्चे को केवल 'यह मत करो', 'वह मत करो' आदि आज्ञाएँ देने से कोई लाभ न होगा। अपने को पूर्ण और बड़े मान कर जबरदस्ती बच्चे पर अपनी इच्छाएँ थोपना सर्वथा अनुचित होगा। बड़ों का यह अहम्भाव ही बच्चों का सबसे बड़ा शत्रु है। इसी समस्या का एक दूसरा पहलू है, जिसे हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे। एक स्कूल जाने लायक अवस्था वाला बच्चा अपनी पेंसिल एक चाकू से बनाना चाहता है, परन्तु उसकी माँ तत्काल ही दौड़ कर चाकू उसके हाथ से छीन लेती है, और इस डर से कि कहीं चाकू उसके हाथ में न लग जाय, स्वयं पेंसिल बनाने लगती है। बच्चे को यह बहुत नागवार मालूम होता है,

समय ज्ञान के भण्डार अगर बालक के सामने खोल दिये जायँ, तो बड़ी सरलता से वह जटिल विषयों का ज्ञान स्वानुभव से प्राप्त कर सकता है। अतः इस समय वनस्पतिशास्त्र, प्राणी-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, खगोल-विद्या, इतिहास-भूगोल, रसायन-शास्त्र, अङ्कगणित-बीजगणित आदि विषय साधनों और चित्रों द्वारा बालकों के सामने रखने चाहिये। बालक इन विषयों में बड़ा रस लेते हैं। यह कोरे सिद्धान्त की बात नहीं है। यह तो एक ठोस सचाई है। यह ध्यान रहे कि यह सब कुछ सम्वेदनकाल में ही सम्भव है जो निश्चित समय पर ही आता है। सम्वेदनकाल में ही बालक में ग्रहण करने की शक्ति प्रबल होती है। प्रकृति ने भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिये भिन्न-भिन्न सम्वेदनकाल निश्चित किये हैं। बालक की शिक्षा के लिये प्रथम छः वर्ष बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। अतः बालक की शिक्षा शुरू से ही होनी चाहिये, छः साल के बाद नहीं, जैसा कि आजकल होता है।

## बालक में वातावरण की विशेषताओं को अपनाने की विलक्षण शक्ति है

जिस प्रकार बालक भाषा आदि सीखता है, उसी प्रकार वह अपनी जाति और राष्ट्र की विशेषताओं को अपनाता है। जब बालक जन्म लेता है, तो उस समय वह हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी, जैन, रोमन कैथोलिक, प्रोटेस्टेण्ट आदि कुछ नहीं होता। और न वह हिन्दुस्तानी, जापानी, चीनी, रूसी, अमरीकी या अँग्रेज होता है। वह केवल बालक होता है। लेकिन धीरे-धीरे वह जिस धर्म या जाति में पैदा होता है, उसी धर्म और जाति को अपना लेता है। इसी प्रकार वह काँग्रेसी, नाजी, फासिस्ट, समाजवादी, कम्युनिस्ट आदि बन जाता है। बालक को यह सब कुछ कौन सिखाता है? बालक खुद ही वातावरण से इन सब बातों को ग्रहण कर लेता है। प्रकृति ने बालक को एक ऐसी विलक्षण शक्ति दी है

जिससे वातावरण की विशेषताओं को वह अपने जीवन का अंग बना लेता है। बालक समय और स्थल-विशेष के अनुकूल अपना व्यवहार और निर्माण करता है। भारत में पैदा हुआ बालक गाय का जितना आदर-सत्कार करेगा उतना इंगलैंड में पैदा हुआ बच्चा कदापि न करेगा। वातावरण के अनुकूल बन जाने की शक्ति बालक में ही होती है, बड़ों में नहीं। बालक को किसी भी वातावरण में रख दीजिये, वह अपने को उसके अनुकूल बना लेगा। लेकिन प्रौढ़ ऐसा नहीं कर सकते। जो व्यक्ति शान्त वातावरण में रहता है, उसे अगर कोलाहलपूर्ण वातावरण में रख दिया जाय तो वहाँ उसकी नाक में दम आ जायगा और वहाँ से छुटकारा पाने पर ही उसको चैन मिल सकेगी। परन्तु बालक में यह बात नहीं है। आज सुधार पर सुधार होते हैं, परिस्थितियाँ बदलती हैं, भाषा में परिवर्तन होता है। बालक ही इन सब परिवर्तनों को अपना सकता है, बड़ों में यह शक्ति नहीं है।

## बालक ही सब भेदभावों को मिटा सकता है

बालक ही समाज में फैले हुए अर्थहीन रस्म-रिवाजों, विनाशक परम्पराओं, प्राणघातक अन्धविश्वासों, मानवता को कलङ्कित करने वाले छुआछूत, रंग-भेद, जाति-भेद तथा अन्य अनेक प्रकार के गले-सड़े विचारों का अन्त कर एक नये ही वर्गरहित, जातिरहित, सम्प्रदायरहित तथा पन्थरहित समाज का निर्माण कर सकता है। बालक ही ऐसी क्रान्ति कर सकता है। बड़ों से ऐसी आशा रखना आकाश-कुसुम के समान है।

## बालक ही एकता और विश्व-बन्धुत्व की स्थापना कर सकता है

बिखरी हुई मानव-जाति को एकता की लड़ी में पिरोने की शक्ति भी केवल बालक में ही है। भिन्न-भिन्न कुटुम्बों, भिन्न-भिन्न जातियों तथा भिन्न-भिन्न धर्मों के बालक प्रेम से हिलमिल कर साथ-साथ खेलते हैं, साथ-साथ खाते हैं और साथ-साथ काम करते हैं। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब,

छूत-अछूत, राव-रङ्क, हिन्दू-मुसलमान आदि का अप्राकृतिक भेद-भाव उनमें नहीं होता। यह भेद-भाव और कृत्रिमता तो बालक में वातावरण से आती है।

युद्धों का अन्त और विश्व-बन्धुत्व की स्थापना भी बालक ही कर सकता है। राष्ट्रसंघों, शान्ति-परिषदों और सुरक्षा-समितियों से युद्धों का अन्त न तो आज तक हुआ है और न भविष्य में हो सकेगा। यह तो मनोवृत्ति बदलने का सवाल है, जो बचपन में ही बदली जा सकती है।

## बाल्यकाल में सब कुछ सम्भव है

बाल्यकाल ही ऐसा समय है, जिसमें सब कुछ सम्भव है। यही कारण है कि जर्मनी में नाजीवाद, इटली में फासिस्टवाद, जापान में सैनिकवाद और रूस में साम्यवाद की जड़ जमाने के लिये बालक की शरण ली गई। शालाओं में डट कर इन वादों का प्रचार किया गया जिसके फलस्वरूप जर्मनी का बच्चा-बच्चा नाजी, इटली का बच्चा-बच्चा फासिस्ट तथा रूस का हर बालक साम्यवादी बन गया।

बचपन में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे अमिट होते हैं। किसी के मिटाये वे मिट नहीं सकते। जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य नेता भारतीयों में अनुशासन-हीनता की बड़ी शिकायत किया करते हैं। शोरगुल और कोलाहल से वे परेशान हो जाते हैं। इस अव्यवस्था के कारण श्रोताओं को उपदेश भी दिया जाता है और फटकारा भी जाता है। परन्तु नतीजा कुछ नहीं निकलता। निकल भी नहीं सकता। अन्य गुणों की तरह अनुशासन की नींव भी बचपन में ही रखी जा सकती है। स्वतन्त्र वातावरण में पला हुआ बालक बड़ा होकर कभी अनुशासन भंग नहीं करेगा। स्वतन्त्र देशों का उदाहरण इसका जीता-जागता प्रमाण है।

## स्वास्थ्य की दृष्टि से बाल्यकाल का महत्त्व

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी जन्म से छः साल का समय मानव-जीवन का बहुमूल्य समय है। मनुष्यों में पाये जाने वाले अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों का कारण आज बचपन में ही खोजा जाने लगा है। गर्भाधान और गर्भ-काल के आघातों के कारण बालक अनेक रोगों का शिकार हो जाता है जिनका दूर करना सम्भव नहीं है। जन्म के बाद भी जो आघात होता है उसका असर भी कुछ कम नहीं होता। वैज्ञानिकों का कथन है कि गर्भाधान, गर्भकाल, जन्म और जन्म के बाद तक बालक को यदि ठीक वातावरण मिलता रहे तो तीन साल के अन्त तक बालक को आदर्श बन जाना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं। जन्म से छः साल तक जिस ढंग से बालक का लालन-पालन होना चाहिये, वह नहीं होता, फलतः बड़ा होकर बालक अनेक रोगों का शिकार बन जाता है। अकेले अमेरिका में प्रतिवर्ष एक लाख आदमियों को पागलों के अस्पताल में भेजा जाता है। अगर शुरू के छः सालों में पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाय तो कितने ही आदमियों को मूर्ख और पागल बनने तथा समय से पहले मर जाने से बचाया जा सकता है।

## बाल्यकाल में ही कुवृत्तियों का बीजारोपण होता है

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि आज के मानव-जीवन में क्रूरता, स्वार्थ-परता, लालच, ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट, चोरी, विलासिता, हिंसा आदि का बोल-बाला है। गहराई से सोचने पर पता चलेगा कि मानव-समाज में फैली हुई इन सब बुराइयों का बीज बाल्यावस्था में ही होता है। मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के जीवन में जिन बुराइयों को हम देखते हैं, उनका मूल कारण बाल्यावस्था की दुःख-मय स्मृतियाँ और घटनायें हैं। यह ठीक है कि बालक के रोजाना के जीवन में इन स्मृतियों और घटनाओं का असर दिखाई नहीं देता। निर्बल होने के कारण वह सब

प्रकार के अपमानों को चुपचाप सहन कर लेता है। किसी से कुछ नहीं कहता। लेकिन बड़ा होने पर बालक जब शक्ति-संचय कर लेता है तब इन स्मृतियों और घटनाओं का असर ऊपर बताई गई बुराइयों के रूप में बालक के जीवन में स्पष्ट नजर आता है। अनेक बार ऐसा होता है कि बालक के मन में झूठ बोलने, चोरी करने और छल-कपट से काम लेने का जरा-सा इरादा न होने पर भी, हम उस पर झूठ बोलने, चोरी करने और छल-कपट से काम लेने का आरोप लगा देते हैं। ऐसे मिथ्या आरोप का नतीजा यह होता है कि बड़ा होने पर अच्छे से अच्छा बालक भी झूठ बोलने लगता है, चोरी करने लगता है, छल-कपट से काम लेने लगता है। अन्य बुराइयों के सम्बन्ध में भी यही होता है। अतः बालक पर झूठे आरोप लगाना, अनुचित रूप से उसे दबाना एक ऐसा अपराध है जो कभी माफ नहीं किया जा सकता।

## बाल्य-काल चरित्र-निर्माण के लिये सर्वोत्तम है

जन्म से छः साल का समय केवल शारीरिक और मानसिक विकास के लिये नहीं, बल्कि चरित्र-निर्माण के लिये भी महत्त्वपूर्ण है। इस समय बालक स्वयं ही चरित्र-निर्माण की बातों को ग्रहण करता है। चरित्र-विकास प्राकृतिक प्रेरणा या अन्तःशक्ति से होता है। यह ऊपर से लादा नहीं जा सकता। चरित्र-निर्माण के लिये बालक को स्वतन्त्र रूप से अपनी मनपसन्द प्रवृत्तियों के अनुसार चलने के लिये योग्य वातावरण मिलना चाहिये। प्रवृत्ति के अनुसार काम करते-करते बालक में योगियों जैसी एकाग्रता आ जाती है। अपने काम में वह इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने आसपास की दुनिया को वह बिल्कुल भूल जाता है, उसे अपनी जरा भी सुध-बुध नहीं रहती। उस समय का दृश्य देखते ही बनता है। एकाग्रता द्वारा बालक इच्छा-शक्ति की रचना करता है जिससे चरित्र का निर्माण होता है। यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये कि उपदेश द्वारा चरित्र-निर्माण का प्रयत्न करना बालू में से तेल निकालने के समान है।

## कोरा उपदेश लाभ के बजाय हानि पहुँचाता है

उपदेश हृदय को स्पर्श नहीं करता, बुद्धि तक सीमित रहता है। उपदेश अच्छा बनने की प्रेरणा तो दे सकता है, परन्तु अच्छा बनाने की उसमें शक्ति नहीं है। सदियों से हम उपदेश और प्रवचन सुनते आ रहे हैं। उपदेशों से भरपूर पुस्तकों के पढ़ने में भी हम कोई कसर उठा नहीं रखते। परन्तु जब अपने जीवन की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो अपने को हम कोरा ही पाते हैं। हमारे कहने और करने में जरा भी मेल नहीं है। हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। ऊपर से तो हम प्रेम का राग अलापते हैं, परन्तु अन्दर से ईर्ष्या-द्वेष की भट्टी में जलते रहते हैं। बात तो हम विश्वबन्धुत्व की करते हैं, परन्तु अपने पड़ोसी का गला घोंटने के लिये हम हरदम तैयार रहते हैं। हमारा आज का जीवन शत-प्रतिशत दुरंगा हो गया है। जिन्हें हम अपना धर्मगुरु मानते हैं, जीवन में उनके सिद्धान्तों के बिल्कुल विपरीत ही चलते हैं। हजरत मुहम्मद और प्रभु ईसा के अनुयायी भ्रातृत्व और प्रेम का सन्देश फैलाने के बदले खून की नदियाँ बहाने और निर्बलों को कुचलने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। भगवान महावीर और बुद्ध के भक्त सत्य और अहिंसा का प्रचार करने के बजाय येनकेन-प्रकारेण धन बटोरने में लगे हुए हैं। यही हाल कर्मयोगी कृष्ण और मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के उपासकों का है। महात्मा गाँधी वर्षों से सत्य और अहिंसा तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का उपदेश देते रहे, छुआछूत को मिटाने के लिये एड़ी-चोटी का जोर लगाते रहे। लेकिन यह एक खुला रहस्य है कि सत्य और अहिंसा तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता से हम कोसों दूर हैं। छुआछूत से भी हम चिपके हुए हैं। कारण स्पष्ट है। बचपन से जो संस्कार रग-रग में घुस गये हैं, उनका निकालना बड़ा कठिन है। सत्य, अहिंसा का प्रचार करने के लिये; नीतिमय जीवन बनाने के लिये, हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिये, छुआछूत को मिटाने

के लिये बाल्यकाल ही सर्वश्रेष्ठ है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बालक ही सुधारों को, नये विचारों को सरलता से अपना सकता है। अतः उपदेशों पर शक्ति खर्च न करके बालक की ओर ध्यान देना चाहिये। जीवन-निर्माण के लिये सुन्दर वातावरण बनाना चाहिये। जीवन-निर्माण के लिये वातावरण बालक का प्राण है। वातावरण बालक का निर्माण भी कर सकता है और विनाश भी। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है—"जन्म का राम वातावरण के प्रभाव से रावण बन जाता है।"

## स्वतन्त्रता का सवाल बालक की स्वतन्त्रता का सवाल है

स्वतन्त्रता की दृष्टि से भी बालक का महत्त्व कुछ कम नहीं है। सदियों से मानव-जाति ने स्वतन्त्रता के नाम पर पानी की तरह अपना खून बहाया है, भारी से भारी बलिदान किया है। लेकिन हम देखते हैं कि आज भी मानव-जाति गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई है पराधीनता की चक्की में पिस रही है। राजनीतिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि अमेरिका, इंगलैंड, रूस आदि देश स्वतन्त्र हैं, वे किसी अन्य जाति के गुलाम नहीं हैं। लेकिन वास्तव में वे भी स्वतन्त्र नहीं हैं, एक दूसरे से भयभीत हैं। कौन जानता है कि आज जो स्वतन्त्र हैं, कल उन्हें अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धोने पड़ें। सच्ची और स्थायी स्वतन्त्रता मानव-जाति के परम हितैषी और परम मित्र बालक को स्वतन्त्र करने से ही आयेगी। यह खूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि जब तक बालक गुलाम है, तब तक मानव-समाज गुलाम ही रहेगा। बालक के गुलाम रहते हुए स्वतन्त्रता का स्वप्न देखना हास्यप्रद है। वृक्ष को हरा-भरा और सरसब्ज रखने के लिये जड़ को न सींच कर पत्तों और टहनियों को पानी देते रहना मूर्खता नहीं तो और क्या है? अतः स्वतन्त्रता का सवाल बालक की स्वतन्त्रता का सवाल है। विश्व-शान्ति, विश्व-बन्धुत्व और विश्वकल्याण के लिये बालक को स्वतन्त्र करना अनिवार्य है।

## बालक ही हमारी सब समस्याओं को हल कर सकता है

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन की नैतिक, धार्मिक, शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आदि सभी जटिल समस्याओं को सुलझाने के लिये बालक ही सर्वोत्तम साधन है क्योंकि यह अद्भुत शक्ति का स्रोत है। इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय है ही नहीं, हो भी नहीं सकता।

बालक प्रकृति की अनमोल देन है, सुन्दरतम कृति है, निर्दोषतम वस्तु है। बालक मनोविज्ञान का मूल है, शिक्षक की प्रयोग-शाला है, कुल का दीपक है, माता-पिता का सर्वस्व है, प्रेम का अवतार है, मानव-जगत् का निर्माता है, क्रान्ति का मूल स्रोत है। बालक का विकास दुनिया का विकास है, बालक की सेवा दुनिया की सेवा है।

———



बच्चा त्रिकोण के टुकड़ों से
भूमिति के आकार बना रहा है



बच्चे झाड़ू लगा रहे हैं



# माता-पिता की ज़िम्मेदारी

आज माता-पिता की जिम्मेदारी का महत्त्व बढ़ गया है, इसने नया ही रूप धारण कर लिया है। इसका कारण आधुनिक मनोविज्ञान है, जिसने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव-जाति का भविष्य नवयुवकों के हाथों में नहीं, बल्कि बालकों के हाथों में है। यदि इस दुनिया को स्वर्ग बनाना है तो हमें अपने बालकों का यथोचित विकास करना चाहिये। बाल-जीवन ही नई सभ्यता की नींव है। यही उसकी सामग्री है। यही उसके विकास का नियम है। यही उसकी सफलता की कुञ्जी है। अतः बाल-जीवन का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने तथा उसके प्रति उचित वृत्ति रखने में हमारा कल्याण और उदासीन रहने में हमारी मृत्यु है। इसीलिये माता-पिता की स्थिति मनुष्य-जाति को नया जीवन, सभ्यता को नया रूप, समाज को नया सुख और शान्ति देने की है। परन्तु माता-पिता क्या अपने गम्भीर उत्तरदायित्व को पूरा कर रहे हैं?

पागलों ने पहले पहल माता-पिता को दोषी ठहराया, और फ्रायड ने पहले पहल इस अभियोग की सचाई की पुष्टि की। उसने अकाट्य तर्क और प्रामाणिक घटनाओं से सिद्ध कर दिया कि पागलों के मन की खलबली और ऊधम उनके बाल-जीवन की दबाई हुई इच्छाओं और प्रवृत्तियों की गूञ्ज है और बल-पूर्वक दबाई हुई इच्छाओं से उत्पन्न होने वाले दुःखों का कारण माता-पिता का अन्यायपूर्ण और कठोर व्यवहार है। मनुष्य-जाति में आज जो मानसिक अस्वास्थ्य, पारिवारिक क्लेश, सामाजिक कलह और अन्तर्जातीय युद्ध हम देख रहे हैं, इन सब का कारण त्रुटिपूर्ण और दोषपूर्ण पालन-पोषण है। यदि बाल-जीवन आनन्दमय हो, तो हमारी हल

न होने वाली समस्याएँ हल हो जायँ और नये जीवन, नये सुख का अनुभव हो।

माता-पिता के बालक के पालन-पोषण में क्या-क्या कमियाँ हैं, जिनके कारण हमारा सामाजिक जीवन इतना भयङ्कर बना हुआ है? आइए, उनका अध्ययन करें।

## बालक के पालन-पोषण के लिए केवल अन्तर्ज्ञान काफी नहीं

(क) माता-पिता का पहला दोष यह है कि वे यह समझते हैं कि बालक के पालन-पोषण के लिये उनका अन्तर्ज्ञान तथा उनके परम्परागत रिवाज ही काफी हैं, और उन्हें किसी विशेष बाल-जीवन-विज्ञान और ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं। इस मिथ्या विश्वास के कारण माता-पिता अपने आपको पालन-पोषण में पूर्ण समझते हैं, इसलिये बालक पर जो अत्याचार होते हैं, उन्हें वे नहीं जानते, नहीं महसूस करते। नीचे दिये गये उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि माता-पिता का यह ख्याल कि उनका बाल-पालन-पोषण का अनुभव ठीक और काफी है, बिल्कुल गलत है।

(१) यदि माता-पिता का अन्तर्ज्ञान और सामाजिक रीति-रिवाज पालन-पोषण के लिये ठीक होते तो आज मनुष्य-समाज की यह दुर्दशा क्यों होती? जब हम शारीरिक रोग के शिकार हो जाते हैं तो उसका कारण अपने वातावरण और व्यवहार में ढूँढ़ते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी को मलेरिया हो जाय, तो उसका कारण हम आस-पास के वातावरण अर्थात् गन्दे पानी के छोटे-छोटे गड्ढों अथवा गन्दी नालियों में पैदा हुए मच्छरों के काटने में पाते हैं। इसी प्रकार अन्य शारीरिक रोगों, जैसे हैजा, टाइफायड इत्यादि का कारण हम अपने खाने-पीने की त्रुटियों में ढूँढ़ते हैं। ऐसा क्यों? यह इसलिये कि हमारा शारीरिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्तर्ज्ञान काफी नहीं है। इस कमी को पूरा करने के लिये अपनी बुद्धि द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना अति अनिवार्य है।

बालक के मानसिक अस्वास्थ्य अर्थात् चोरी, झूठ, आलस्य, ठगी आदि असामाजिक व्यवहारों का कारण शारीरिक रोगों की तरह उसके वातावरण में है। बालक के लिये मानसिक वातावरण उसके माता-पिता हैं। इसलिए बालक के मानसिक अस्वास्थ्य के कारण उसके माता-पिता हैं। बालक का अस्वस्थ और असामाजिक वातावरण सर्व साधारण है। कहने का अभिप्राय यह है कि माता-पिता का अन्तर्ज्ञान बाल-पालन-पोषण के लिए काफी नहीं है। जैसे शारीरिक स्वास्थ्य के लिये स्वास्थ्य-ज्ञान का होना आवश्यक है, वैसे ही बालक के मानसिक स्वास्थ्य के लिये बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक और अनिवार्य है।

(२) केवल यही नहीं कि अन्तर्ज्ञान हमारे स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकता, बल्कि रोगी होने पर रोग के निवारण का साधन भी नहीं बन सकता। हम जानते हैं कि पश्चिमीय देशों में जहाँ शारीरिक और औषध-विज्ञान ने उन्नति की है, वहाँ के लोगों की रोगों से कितनी रक्षा हुई है। कई रोगों से तो वहाँ अब प्रतिशत नाममात्र ही मौतें होती हैं। उदाहरणार्थ शारीरिक विज्ञान से पहले बहुत-सी माताएँ बच्चे के पैदा होने पर मर जाती थीं, परन्तु अब इनकी संख्या बहुत कम रह गई है। इसके विपरीत हमारे देश का क्या हाल है? यहाँ अब भी हमने अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभवों को ही अपना पथ-प्रदर्शक बना रक्खा है। यहाँ अब भी दाइयाँ और पास-पड़ोस की बड़ी-बूढ़ी औरतों का ही बोलबाला है, जो अन्तर्ज्ञान और परम्परागत रूढ़ियों की अवतार समझी जाती हैं। इनके द्वारा कितनी अधिक मात्रा में माताएँ बच्चे पैदा होने के समय मर जाती हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है। जब शारीरिक रोगों से मुक्ति पाने के लिये बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान की इतनी आवश्यकता है, तो क्या मानसिक अस्वास्थ्य से मुक्ति पाने के लिये मनोविज्ञान की आवश्यकता नहीं।

न होने वाली समस्याएँ हल हो जायँ और नये जीवन, नये सुख का अनुभव हो।

माता-पिता के बालक के पालन-पोषण में क्या-क्या कमियाँ हैं, जिनके कारण हमारा सामाजिक जीवन इतना भयङ्कर बना हुआ है? आइए, उनका अध्ययन करें।

## बालक के पालन-पोषण के लिए केवल अन्तर्ज्ञान काफी नहीं

(क) माता-पिता का पहला दोष यह है कि वे यह समझते हैं कि बालक के पालन-पोषण के लिये उनका अन्तर्ज्ञान तथा उनके परम्परागत रिवाज ही काफी हैं, और उन्हें किसी विशेष बाल-जीवन-विज्ञान और ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं। इस मिथ्या विश्वास के कारण माता-पिता अपने आपको पालन-पोषण में पूर्ण समझते हैं, इसलिये बालक पर जो अत्याचार होते हैं, उन्हें वे नहीं जानते, नहीं महसूस करते। नीचे दिये गये उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि माता-पिता का यह ख्याल कि उनका बाल-पालन-पोषण का अनुभव ठीक और काफी है, बिल्कुल गलत है।

(१) यदि माता-पिता का अन्तर्ज्ञान और सामाजिक रीति-रिवाज पालन-पोषण के लिये ठीक होते तो आज मनुष्य-समाज की यह दुर्दशा क्यों होती? जब हम शारीरिक रोग के शिकार हो जाते हैं तो उसका कारण अपने वातावरण और व्यवहार में ढूँढ़ते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी को मलेरिया हो जाय, तो उसका कारण हम आस-पास के वातावरण अर्थात् गन्दे पानी के छोटे-छोटे गड्ढों अथवा गन्दी नालियों में पैदा हुए मच्छरों के काटने में पाते हैं। इसी प्रकार अन्य शारीरिक रोगों, जैसे हैजा, टाइफायड इत्यादि का कारण हम अपने खाने-पीने की त्रुटियों में ढूँढ़ते हैं। ऐसा क्यों? यह इसलिये कि हमारा शारीरिक स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्तर्ज्ञान काफी नहीं है। इस कमी को पूरा करने के लिये अपनी बुद्धि द्वारा वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना अति अनिवार्य है।

बालक के मानसिक अस्वास्थ्य अर्थात् चोरी, झूठ, आलस्य, ठगी आदि असामाजिक व्यवहारों का कारण शारीरिक रोगों की तरह उसके वातावरण में है। बालक के लिये मानसिक वातावरण उसके माता-पिता हैं। इसलिए बालक के मानसिक अस्वास्थ्य के कारण उसके माता-पिता हैं। बालक का अस्वस्थ और असामाजिक वातावरण सर्व साधारण है। कहने का अभिप्राय यह है कि माता-पिता का अन्तर्ज्ञान बाल-पालन-पोषण के लिए काफी नहीं है। जैसे शारीरिक स्वास्थ्य के लिये स्वास्थ्य-ज्ञान का होना आवश्यक है, वैसे ही बालक के मानसिक स्वास्थ्य के लिये बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक और अनिवार्य है।

( २ ) केवल यही नहीं कि अन्तर्ज्ञान हमारे स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकता, बल्कि रोगी होने पर रोग के निवारण का साधन भी नहीं बन सकता। हम जानते हैं कि पश्चिमीय देशों में जहाँ शारीरिक और औषध-विज्ञान ने उन्नति की है, वहाँ के लोगों की रोगों से कितनी रक्षा हुई है। कई रोगों से तो वहाँ अब प्रतिशत नाममात्र ही मौतें होती हैं। उदाहरणार्थ शारीरिक विज्ञान से पहले बहुत-सी माताएँ बच्चे के पैदा होने पर मर जाती थीं, परन्तु अब इनकी संख्या बहुत कम रह गई है। इसके विपरीत हमारे देश का क्या हाल है ? यहाँ अब भी हमने अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभवों को ही अपना पथ-प्रदर्शक बना रक्खा है। यहाँ अब भी दाइयाँ और पास-पड़ोस की बड़ी-बूढ़ी औरतों का ही बोलबाला है, जो अन्तर्ज्ञान और परम्परागत रूढ़ियों की अवतार समझी जाती हैं। इनके द्वारा कितनी अधिक मात्रा में माताएँ बच्चे पैदा होने के समय मर जाती हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है। जब शारीरिक रोगों से मुक्ति पाने के लिये बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान की इतनी आवश्यकता है, तो क्या मानसिक अस्वास्थ्य से मुक्ति पाने के लिये मनोविज्ञान की आवश्यकता नहीं।

( ३ ) अन्तर्ज्ञान का तीसरा दोष यह है कि यह उन्नति का मार्ग कभी नहीं दिखा सकता। हम जानते हैं कि पश्चिमी देशों ने खेती-बाड़ी में भारी उन्नति की है। उन्होंने कितने अच्छे गेहूँ, चावल और सब्जियाँ इत्यादि पैदा कर लिये हैं। उसी जमीन में से एक फसल के बजाय दो-दो, तीन-तीन फसलें पैदा करते हैं। इसी प्रकार उन्होंने साधारण फूलों को लेकर बहुरंगी और बड़े-बड़े फूल उत्पन्न कर लिये हैं। पशु-जाति का भी उन्होंने विकास किया है। चार सेर दूध देने वाली गाय को ५० सेर दूध देने वाली गाय बना दिया है और हमारा देश जो खेती-बाड़ी का घर गिना जाता है, जहाँ पशुओं का कोई हिसाब ही नहीं है, वहाँ कोई उन्नति नहीं हुई। इसका कारण यही है कि हम लोग केवल अपने अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभवों पर ही निर्भर हैं। यदि खेती-बाड़ी को अच्छा बनाने और पशु-जाति की नसल सुधारने के लिये वैज्ञानिक ज्ञान अनिवार्य है, तो क्या मनुष्य-जाति के आदर्श-विकास के लिये मनुष्य-स्वभाव का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक नहीं ? यदि हम चाहते हैं कि मनुष्य-जाति श्रेष्ठ बने तो इसके लिये हमें बाल-मनोविज्ञान को समझना होगा और इससे फायदा उठाना होगा।

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के लिये, उनके मानसिक रोगों के निराकरण के लिये, बाल-मन के सर्वोत्तम विकास के लिये बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। आश्चर्य तो यह है कि जहाँ और सामाजिक क्षेत्रों में हम वैज्ञानिक-ज्ञान और ट्रेनिंग को आवश्यक समझते हैं, वहाँ बाल-पालन-पोषण के लिए कोई ऐसी माँग हम क्यों नहीं करते ? गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों से यह माँग नहीं की जाती कि उन्होंने बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन और बाल-पालन-पोषण की ट्रेनिंग पाई है या नहीं ? परन्तु यदि कोई किसी कारखाने में नौकरी करना चाहे तो उससे पहले यह पूछा जाता है कि उसने

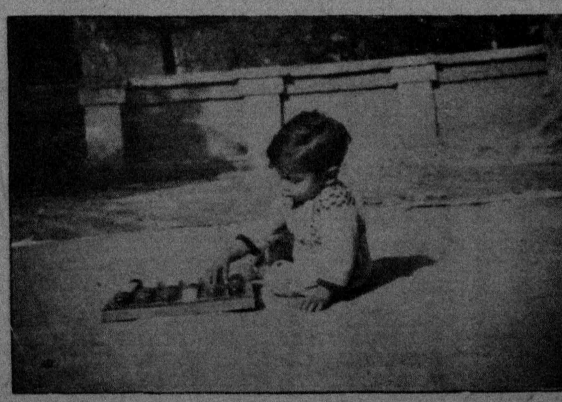
कारखाने के काम में ट्रेनिंग पाई हुई है या नहीं ? कारखाने का मालिक जानता है कि यदि कारखाने की मशीन किसी अनाड़ी के हाथ में दे दी, तो मशीन का सत्यानाश हो जायेगा। हम मशीन के चलाने के लिये और उसकी रक्षा के लिये तो इतने चौकस रहते हैं, परन्तु बाल-विकास और बाल-रक्षा के लिये हम माता-पिता बनने वालों से बाल-मनोविज्ञान के ज्ञान और ट्रेनिंग की कोई माँग नहीं करते। यह भाग्य की विडम्बना नहीं तो और क्या है कि मनुष्य अपने बालकों की अपेक्षा अपनी मशीनों के लिये अधिक सुरक्षित परिस्थितियों का निर्माण करता है। मशीन को चलाने के लिये तो ट्रेंड व्यक्तियों की आवश्यकता अनुभव की जाती है, लेकिन बालक को अनाड़ी और अनुभव-हीन माता-पिता के हाथों में सौंप दिया जाता है। कितना अँधेर ! कितना अन्याय ! और इस पर भी सितम यह है कि माता-पिता अपने सर्वथा योग्य और पूर्ण त्यागी होने का ढोंग रचते हैं। जिस व्यक्ति को कारखाने की मशीन चलाने की ट्रेनिंग नहीं, वह तोड़-ताड़ कर मशीन का सत्यानाश करने के सिवा और कर भी क्या सकता है ? और यदि मशीन बच भी जाये तो यह उसकी कृपा नहीं। यही हाल बालक के पालन-पोषण का है। अज्ञानी और अनुभव-हीन माता-पिता बालक के मानसिक गठन को अस्वस्थ करने के अतिरिक्त और क्या सेवा कर सकते हैं ? और यदि बालक मानसिक रूप से कुछ स्वस्थ रहे भी, तो इसमें समाज और माता-पिता की कृपा नहीं। यदि माता-पिता को अपना उत्तरदायित्व उचित रूप से निभाना है तो उन्हें बालक के विषय में सच्चा ज्ञान प्राप्त करना और ट्रेनिंग लेनी चाहिये।

*जहाँ असंख्य माता-पिता बाल-शारीरिक-विज्ञान* और मनोविज्ञान से विमुख और उदासीन रहते हैं, वहाँ कुछ पढ़े-लिखे माता-पिता बाल-ट्रेनिंग के नियमों का कठोरता से पालन करते हैं, मगर ऐसा करने में वे बालक की अवस्था और प्रकृति की ओर ध्यान नहीं देते। उनका

व्यवहार नये और उत्साही डाक्टर का सा होता है जो पहले पहल अपने रोगियों की व्यक्तिगत प्रकृति का विचार न करके अपनी औषधियाँ देता है। समय आने पर उसे अनुभव होता है कि अच्छी से अच्छी औषधि भी प्रत्येक रोगी के लिये उपयोगी नहीं। उसे यह भी पता लगता है कि विशेष अवस्था को ध्यान में रखकर ही दवाई चुननी चाहिये, और औषधि सम्बन्धी आज्ञाओं और सुझावों में परिवर्तन करना चाहिये। पढ़े-लिखे माता-पिताओं को भी पुस्तकों में दिये हुए बाल-पालन-पोषण के नियमों और विधियों का अपने बालक की निजी प्रकृति और अवस्थाओं को सम्मुख रख कर सुधार करना चाहिये। उदाहरण के लिये माता-पिता बाल-ट्रेनिंग सम्बन्धी पुस्तकों में पढ़ते हैं कि बालक को समय पर दूध पिलाना चाहिये, उसे समय पर टट्टी करानी चाहिये। यदि बालक की अवस्था और निजी प्रकृति की परवाह न करके इन बातों पर कठोरता से अमल किया जाए तो बालक स्वस्थ होने के बजाय रोगी हो जावेगा। सब बालकों के लिये दूध पीने के समय का अन्तर और दूध की मात्रा, अभ्यास करने की योग्यता और समय एक समान नहीं। यदि बालक की शारीरिक और मानसिक अनुभव की तीव्रता, उसकी आवश्यकता के बारे में लापरवाही की जाय तो बाल-पालन की वैज्ञानिक विधियाँ स्वास्थ्य के साधन बनने के बजाय बाल-कष्ट और रोग के कारण बन जायेंगी। जहाँ एक प्रकार के माता-पिताओं का यह दोष है कि वे बालक और रोग के बाल-पालन सम्बन्धी वैज्ञानिक नियमों और विधियों से कोई सहायता नहीं लेते, वहाँ दूसरे प्रकार के माता-पिता का यह दोष है कि वे अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभवों को बाल-पालन-पोषण में कोई स्थान नहीं देते। यह दोनों ही प्रकार के माता-पिता अपने उत्तरदायित्व को सही तौर से पूरा नहीं करते। अतः प्रत्येक माता-पिता को केवल बाल-पालन-पोषण का वैज्ञानिक ज्ञान और ट्रेनिंग ही नहीं चाहिये, बल्कि एक वैज्ञानिक की तरह अपने बालक की निजी प्रकृति और आवश्यकताओं को भी समझना



बालक भू मिति आकृतियों को डब्बे में डाल रहे हैं



बालक रंगीन गद्दों से डिजाइन बना रहा है

चाहिये। अन्तर्ज्ञान और परम्पराओं का बाल-पालन-पोषण में स्थान है, परन्तु बाल-मनोविज्ञान और ट्रेनिंग की सहायता से इसमें सुधार करने की जरूरत है। इसी प्रकार बाल-मनोविज्ञान और ट्रेनिंग का बाल-पालन-पोषण में स्थान है, परन्तु अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभव के द्वारा इसमें सुधार होना चाहिये। अन्तर्ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान परस्पर विरोधी नहीं, अपितु परस्पर सहायक हैं। इसलिये माता-पिता को अपने उत्तर-दायित्व को ठीक तौर पर निभाने के लिये वैज्ञानिक बाल-ज्ञान और ट्रेनिंग से अपने अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभव को ज्योतिर्मान करना चाहिये। बाल-ज्ञान तथा बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों में दिये नियमों और विधियों का बिना विवेक के बेतहाशा प्रयोग नहीं करना चाहिये। परन्तु इन्हें बालक की अवस्था और वातावरण को सम्मुख रख कर ही काम में लाना चाहिये।

## केवल माता-पिता का आचरण यथेष्ठ नहीं

( ख ) जैसे माता-पिता का पहला दोष वैज्ञानिक ज्ञान से उदासीन रह कर केवल अन्तर्ज्ञान और परम्परागत अनुभव पर निर्भर रहना है, वैसे ही उनका दूसरा दोष यह है कि वे बालक के लिये अपना आचार-विचार ही उसके जीवन-निर्माण के लिये यथेष्ठ समझते हैं। बालक के ठीक-ठीक विकास के लिये माता-पिता का उत्तम आचार-विचार आवश्यक है, जिसकी प्रत्येक मानस-शास्त्री पुष्टि करता है। माता-पिता का आचार-विचाररहित जीवन बालक के जीवन के लिये अत्यन्त प्रतिकूल व हानिकारक है। बालक माता-पिता का अनुकरण करना चाहता है। माता-पिता बालक के आदर्श हैं। इसलिये यदि उनका अपना आचार-विचार दोषपूर्ण और असामाजिक हो, तो बालक में भी असामाजिक व्यवहार की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।

परन्तु माता-पिता को बालक के चरित्र के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने के लिये केवल अपने उच्च जीवन से ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए; क्योंकि उच्च जीवन रखते हुए भी यदि वे बालक के मित्र न बन सके, बालक के विश्वास-पात्र न बन सके, उसके व्यक्तित्व का उचित सम्मान न कर सके, तो बालक असामाजिक व्यवहार करने के लिये उत्सुक हो जायगा। क्या हम नहीं जानते कि उच्च से उच्च जीवन व्यतीत करने वालों के बालकों का जीवन अत्यन्त निकृष्ट हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि अपनी अज्ञानता और नासमझी के कारण माता-पिता बालक के साथ अपना उचित मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध जोड़ने में असफल रहते हैं। ऐसे उच्च अनाचारवान माता-पिताओं की वही हालत है, जो कई अच्छे विद्वानों की होती है। कई विद्वान अध्यापक स्वयं बहुत विद्वान होते हुए भी अपने विद्यार्थियों को अपना ज्ञान नहीं दे सकते। उलटा अपने पढ़ाने की गलत विधियों द्वारा उनके मन में ज्ञान के लिये घृणा तक उत्पन्न कर देते हैं, जिससे उनका ज्ञान-जीवन में प्रवेश करना असम्भव हो जाता है। अच्छे अध्यापक के लिये केवल अच्छा ज्ञान होना ही काफी नहीं, परन्तु उसके लिये ऐसी विधियों का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है, जिनके द्वारा वह अपने ज्ञान को रोचक और आकर्षक बनाने में सफल हो सके और विद्यार्थियों को अपना मित्र तथा विश्वास-पात्र बना सके। इसी प्रकार माता-पिता का भी यही कर्तव्य है कि वे बालक के साथ ऐसा मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध स्थापित करें, जिससे उसके लिये उनका उच्च जीवन मनोमोहक और मनोरंजक हो जाय।

साधारण माता-पिता मूर्ख अध्यापक की तरह बालक को मुख्यतः दो प्रकार की विधियों द्वारा अच्छे आचार-विचार वाला बनाने का प्रयत्न करते हैं :—

( १ ) दण्ड, भय और झूठ की विधि।

( २ ) उपदेश द्वारा बालक के मन को प्रभावित करना।

# दण्ड, भय और उपदेश

पहली विधि अर्थात् दण्ड, भय और झूठ की विधि बालक के मानसिक विकास के लिये जितनी हानिप्रद है, और व्यक्ति को गुणवान् बनाने में जितनी असमर्थ है, उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। बालक से कोई नया कार्य करवाना हो, किसी बात से हटाना अथवा रोकना हो तो हम उसको दण्ड की धमकी देकर एकदम करा सकते हैं। हमें यह विधि आसान लगती है, क्योंकि इसमें बालक को समझाने की कठिनाई नहीं पड़ती, और ना ही सुविधाओं का त्याग करना पड़ता है। हम बालक को सुलाना चाहते हैं। हमें अन्य काम है। बालक सोना नहीं चाहता। ऐसी अवस्था में भला बालक को समझाने का अवकाश कहाँ? इसलिये हम भय द्वारा उससे अपना उद्देश्य पूरा करा लेते हैं। परन्तु सवाल यह है कि इस विधि के प्रयोग से बालक के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है? बालक का मन इससे सदा के लिये अस्वस्थ हो जाता है। एक मोटा दृष्टान्त लीजिये। किसी ताले को खोलने के दो तरीके हैं, एक तो यह कि ताले की बनावट को समझा जाय, और उस ताले की जो उपयोगी कुंजी है, उसको लगाया जाय। दूसरी विधि यह है कि ताले को तोड़ कर खोला जाय। यह दूसरी विधि हालाँकि तुरन्त परिणाम उत्पन्न करती है और ताले को समझने तथा धीरज से काम लेने की मुसीबत से बचा देती है, परन्तु यह पूर्णतया गलत विधि है। यदि इस विधि का अधिक अवसरों पर प्रयोग किया जाय तो ताला हमेशा के लिये खराब हो जायगा। हम साधारणतः यह कहते हैं कि "मशीन के साथ लड़ना बेवकूफी है। अगर उससे काम लेना है, तो उसको समझो।" यदि लोहे की बनी मशीनों पर शारीरिक बल के प्रयोग से इतनी हानि होती है, तो कल्पना कीजिये कि बालक की मन रूपी मशीन पर, जो सब मशीनों से सूक्ष्म है, दण्ड और भय का कितना हानिकर प्रभाव पड़ता होगा? बालक के साथ झूठ बोलकर

उससे एक या दूसरा काम कराने का सबसे बड़ा नुकसान यह है कि बालक का अपने माता-पिता और शिक्षक में कोई विश्वास नहीं रहता और इस विश्वास के उड़ जाने पर माता-पिता और शिक्षक बालक की आचार-शिक्षा के लिये कुछ भी करने योग्य नहीं रहते। दूसरी विधि, अर्थात् उपदेश के द्वारा बालक के मन पर असर डालना। यद्यपि यह कुछ इतनी हानिकारक नहीं, तथापि यह भी कुछ विशेषरूप से प्रभावशाली नहीं है। बालक की मानसिक अवस्था ऐसी निम्न श्रेणियों की होती है कि उसे यह उपदेश जैसे "तुम्हें यह करना चाहिये," "तुम्हें वह करना चाहिये" रुचिकर नहीं होता और न वह ऐसे उपदेशों के महत्त्व का अनुभव कर सकता है। वह आचार के उपदेश का एक ही अभिप्राय समझता है कि उसके माता-पिता और शिक्षक उससे ऐसे काम कराना चाहते हैं, जिनको वह करना नहीं चाहता।

बालक की मानसिक अवस्था को सामने न रख कर उपदेश-विधि का एक दुःखदाई फल यह होता है कि बालक शुभ आचार को दुःख के साथ सम्बन्धित करता है। उसके लिये सुख और पाप सम्बन्धित हो जाते हैं, और दुःख और शुभ आचार एक ही चीज के दो रूप हो जाते हैं। यह अनुभव और विश्वास बालक के सदाचारी होने में भारी बाधा बन जाते हैं। सच तो यह है कि बालकों के लिये उपदेश-विधि पूर्णतया अनुपयोगी है।

माता-पिता का उत्तरदायित्व तभी पूरा होता है, जब वे यह भली भाँति अनुभव करें कि बालक के साथ व्यवहार में मनोवैज्ञानिक नियमों पर निर्भर व्यवहार उतना ही आवश्यक है, जितना उच्च आचारनिष्ठ जीवन। बालक के साथ उचित मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुकूल व्यवहार पर ही आचारनिष्ठ जीवन की नींव रखी जा सकती है। जिन मनोवैज्ञानिक नियमों का प्रत्येक माता-पिता को अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये पालन करना चाहिये, वे यह हैं—बालक के विकास की गतियों

की ओर वैज्ञानिक वृत्ति, बालक के व्यक्तित्व का सम्मान, स्वयं स्फूर्ति के लिये अवकाश, प्रेमपूर्ण वातावरण, बालक की स्वाभाविक माँगों और रुचियों की तृप्ति और बालक के जीवन की नियमबद्धता आदि* ।

## बालक की मानसिक माँगों की उपेक्षा

( ग ) हमने अब तक माता-पिता के दोषों का वर्णन किया है, अर्थात् माता-पिता अपने उत्तरदायित्व के निभाने में केवल अन्तर्दर्शन पर निर्भर करते हैं तथा बालक के आचार-निर्माण में मनोवैज्ञानिक नियमों का निरादर करते हैं। माता-पिता का तीसरा दोष यह है कि वे बालक की शारीरिक माँगों का तो बहुत ख्याल रखते हैं, लेकिन उसकी मानसिक माँगों का कोई ख्याल नहीं रखते। बालक को वे केवल एक शारीरिक व्यक्ति समझते हैं तथा उसकी शारीरिक माँगों की, अर्थात् उसके खाने-पीने की वस्तुओं का, उसके पहनने-ओढ़ने के वस्त्र आदि का प्रबन्ध करते हैं ? परन्तु यह जानने का कभी कोई प्रयत्न नहीं करते कि बालक की मानसिक माँगें तथा आवश्यकताएँ क्या हैं ? और उनकी पूर्ति के साधन क्या हैं ? माता-पिता यह भूल जाते हैं कि बालक का मानसिक जीवन उनके शारीरिक जीवन के साथ ही प्रारम्भ होता है। जैसे बाहरी परिस्थितियों तथा माता-पिता की शारीरिक परिस्थितियों का बालक पर अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार बाहरी तथा माता-पिता की मानसिक परिस्थितियों का भी बालक पर प्रभाव पड़ता है। जब बालक गर्भ में होता है तो माता के लिये खाने-पीने का विशेष प्रबन्ध पढ़े-लिखे घरों में किया जाता है, ताकि बालक के शरीर का भली प्रकार विकास हो। माता अपनी कई शारीरिक गतियों को छोड़ देती है, जिनके करने से गर्भस्थ बालक को किसी प्रकार की हानि पहुँचने की सम्भावना हो। परन्तु क्या माता-पिता अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं के द्वारा बालक को मानसिक हानि से बचाने

* इन सब बातों पर अन्य लेखों में प्रकाश डाला गया है। —सम्पादक

का प्रयत्न करते हैं ! माता-पिता के आपस में विवाद करने, माता के कुढ़ने तथा क्रोधित होने पर, बालक के मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है, तो क्या माता-पिता ऐसी गतियों से सुधार की सम्भावना भी समझते हैं ! क्या इसकी पूर्ति के लिये कोई प्रयत्न करते हैं ? मनोविश्लेषण-पद्धति के अनुसार रोगियों की परीक्षा करने पर यह सिद्ध हो चुका है कि यदि बालक माता की इच्छा के विरुद्ध गर्भ में जीवन धारण करे तो बालक में मानसिक रूप से अस्वस्थ रहने की प्रवृत्ति हो जाती है। बहुत से बेचारे बालकों को इस प्रकार की प्रतिकूल अवस्था मिलती है; क्योंकि बहुत-सी माताओं पर एक के बाद दूसरा बालक अनपेक्षित रूप से ठूँस दिया जाता है। एक बालक तथा दूसरे बालक के जन्म में दो-तीन वर्ष का अन्तर होना चाहिये। यह आर्थिक तथा शारीरिक दृष्टि से ही आवश्यक नहीं, परन्तु मानसिक दृष्टि से भी अत्यन्त आवश्यक है। बालक का जन्म ऐसी परिस्थिति में नहीं होना चाहिये जहाँ माता-पिता दोनों, विशेषकर माता बालक को पैदा करना न चाहती हो। जरा अन्य दृष्टान्त लीजिये, जिससे पता चलेगा कि माता-पिता किस प्रकार मानसिक माँगों का निरादर करते हैं ! बालक के लिये दूध पीना तो शारीरिक आवश्यकता है, परन्तु स्वयं दूध पीने की क्रिया आवश्यक नहीं। इसलिये बालक यदि स्वयं दूध पीना चाहे तो उसे पीने नहीं दिया जाता। परन्तु उसे पकड़ कर जबरन दूध पिलाया जाता है। माता-पिता को यह अनुभव नहीं होता कि जैसे दूध बालक के शरीर का पोषक है, उसी प्रकार स्वयं दूध पीने की क्रिया भी उसके लिये उतनी ही जरूरी है। जैसे भूखा बालक दूध पीकर शारीरिक तृप्ति तथा शान्ति का अनुभव करता है, उसी प्रकार स्वयं दूध पीने से उसे मानसिक तृप्ति तथा शान्ति प्राप्त होती है। जहाँ माता-पिता बालक को दूध देकर शारीरिक सुख तथा शान्ति देते हैं, वहाँ उसे मानसिक सुख तथा शान्ति से वञ्चित करते हैं। कौन नहीं जानता कि मानसिक अस्वास्थ्य शारीरिक अस्वास्थ्य से कहीं अधिक कठोर दण्ड है। बालक का मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर वह शारीरिक अस्वास्थ्य

का भली प्रकार सामना नहीं कर सकता। इसी प्रकार बालक के लिये नहाना, कपड़े पहनना, बटन लगाना, बूट पहनना तो आवश्यक है, परन्तु इन सब गतियों को उन्हें अपने आप करने देना आवश्यक नहीं समझा जाता, तथा इसीलिये उन्हें करने नहीं दिया जाता। सच तो यह है कि स्वयं स्फूर्ति बालक के मानसिक विकास का प्राण है। स्वयं स्फूर्ति से ही बालक का मन स्वस्थ तथा बलवान हो सकता है। वह शरीर कैसे जीवित रह सकता है जिसे स्वयं स्फूर्ति अर्थात् श्वास लेने, भोजन पचाने तथा हाथ-पाँव मारने का अधिकार न दिया जाय। शारीरिक अंग तो स्वयं स्फूर्ति से ही विकसित होते हैं। मन का भी यही हाल है। वह मन कैसे जीवित रह सकता है जिसे स्वयं काम करने का अधिकार ही न दिया जाय। इसलिये जब बालक हमारी आज्ञा के विरुद्ध कुछ गतियाँ करता है, अर्थात् हमारे रोकने पर भी स्वयं पानी पीता है, स्वयं बाल सँवारता है, स्वयं कपड़े पहनता है, बटन लगाता है, बूट पहनता है इत्यादि, तो वह हमारी दृष्टि से अवश्य आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है। परन्तु वह अपनी दृष्टि के अनुसार अपने भावी जीवन की तैयारी के लिये प्रयत्न कर रहा है। वह हमारी अनुचित इच्छा की पूर्ति में अपनी मृत्यु देखता है। जैसे बालक पर जबरदस्ती रजाई डाल दी जाय और उसका दम घुटने लगे तो वह उसे उतार फेंकता है, उसी प्रकार जब बालक का मानसिक जीवन हमारी आज्ञाओं से खतरे में पड़ जाता है, तो वह रजाई की तरह हमारी आज्ञा को परे फेंक देता है। बालक की ओर से विद्रोह तथा आज्ञा-उल्लंघन करना खतरे की घंटी है, जो इस बात को साबित करता है कि माता-पिता का व्यवहार इतना अत्याचारपूर्ण हो गया है कि वह उसे सहन नहीं कर सकता।

यदि माता-पिता को अपना उत्तरदायित्व सचमुच भली प्रकार निभाना है तो उन्हें ऐसा वातावरण उपस्थित करना होगा जो शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त हो। यह ठीक है कि

बालक का शारीरिक विकास भी होना चाहिये। मनोविज्ञान भी इसका विरोध नहीं करता। परन्तु शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी आवश्यक है; क्योंकि शरीर तथा मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये दोनों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कारण, एक का भी निरादर दोनों के लिये रोग का कारण बनता है।

## बालक की गतियों को अपनी कसौटी पर कसने की भूल

( घ ) माता-पिता का चौथा दोष यह है कि वे बालक की गतियों को उसकी अपनी स्वस्थ विधियों की कसौटी पर न कस कर अपनी तथा तरुण जीवन की कसौटियों पर कसते हैं। वे अपने आपको बालक की गतियों का केन्द्र बनाते हैं। यदि बालक की रुचियाँ तथा गतियाँ उनकी अपनी रुचियों तथा आदर्शों के केन्द्र की ओर आकृष्ट हों, तथा झुकाव रखती हों तो बालक को वे अच्छा, होनहार और सपूत समझते हैं। परन्तु अगर उसका झुकाव उनकी रुचियों के केन्द्र के विरुद्ध हो तो वे उसके लिये बालक को झाड़ते-ताड़ते हैं तथा अन्य अनुचित तरीकों से उसे अपने आदर्शों की ओर खींचने का प्रयत्न करते हैं। यदि महापुरुषों के जीवन के पन्ने उलटे जाएँ तो अधिकांश महापुरुषों के जीवन में यही घटना आती है कि उनके माता-पिता उनसे इसलिये निराश रहते थे कि उनकी रुचि उन कामों तथा व्यवसायों में नहीं होती थी, जिनको उनके माता-पिता उचित समझते थे। जार्ज स्टीवनसन की कहानी किसने नहीं सुनी होगी? उसने छोटी आयु में एक कहानी लिखी थी, जिसका नाम 'जैकिल एण्ड-हाइड' था जो आज अँग्रेजी इतिहास में अमर हो गई है। स्टीवनसन के पिता जी चाहते थे कि वह बैरिस्टर बने। उन्हें स्टीवनसन की यह प्रवृत्ति पसन्द न आई। उसे छः पैसे देते हुए उन्होंने कहा कि "बेटा! फिर ऐसे व्यर्थ कार्यों में समय नष्ट न करना।"

## माता-पिता की बालक के प्रति अहंवृत्ति

माता-पिता बालकों के लिये व्यवसाय तथा आदर्श नियुक्त करते हैं कि उनका यह बेटा डाक्टर, यह इञ्जीनियर, यह व्यापारी तथा यह बैरिस्टर बनेगा क्योंकि वे बालक को अपनी रुचियों तथा आदर्शों के अनुरूप बनाना चाहते हैं। माता-पिता की यह वृत्ति 'अहम्' में केन्द्रित है, जिससे वे बालक के सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व को दोषी बना लेते हैं। माता-पिता का फर्ज यह देखना है कि बालक के व्यक्तित्व का आदर्श-विकास उसके अपने ढंग तथा ढांचे के अनुसार हो। लेकिन ऐसा करने के बजाय वे अपने आदर्श बालक पर थोप कर उसकी आत्मा को लंगड़ा-लूला कर देते हैं। दृढ़ और बलवान बालक तो माता-पिता की इस कठोरता के खिलाफ विद्रोह करके अपनी आन्तरिक वृत्ति को तृप्त कर लेते हैं और यही बालक आगे चल कर महापुरुष बनते हैं। परन्तु साधारण बालक माता-पिता के दबाव में दब जाते हैं। वे सदा दुःखी रहते हैं। मनुष्यजाति की व्यक्तिगत अतृप्ति और असन्तोष इसी दबाव का परिणाम हैं।

इस 'अहम्' केन्द्रित वृत्ति के कारण माता-पिता बालक से यही माँग करते हैं कि उसका व्यवहार उन जैसा हो। जैसे वे स्वयं चुप करके बैठते हैं, वैसे ही उनका बालक चुप करके बैठे। जो बालक ऐसा करता है, उसे सराहते हैं। लेकिन यदि बालक अपनी अवस्था के अनुसार स्फूर्ति करता है, या चुलबुलापन दिखाता है, या चुप करके नहीं बैठता तो माता-पिता उसकी इन हरकतों से प्रसन्न नहीं होते। लेकिन यदि बालक उनकी भाँति, उन जैसी बातें करे, उनकी भाँति व्यवहार करे तो उसकी महिमा के गीत गाते हैं। इसी प्रकार यदि बालक बहुत जल्दी सफाई करना, निश्चित जगह पर चीजें रखना, समय पर टट्टी जाने आदि जैसी आदतों का अभ्यास करले, जो उस आयु के बालकों में साधारणतया नहीं पाई

जातीं, तो माता-पिता बड़ा गर्व अनुभव करते हैं। उनका व्यवहार ही उचित व्यवहार है। उनकी जाँच, उनके विचार तथा उनके भाव ही बालक के जीवन की कसौटियाँ हैं। इसलिये बालक पर वे अपना व्यवहार और अपने ही विचार ठूँसते रहते हैं। उनका ऐसा करना वैसे ही है जैसे बड़े पौधे का फूल काट कर नन्हें पौधे की नन्हीं-सी टहनी में धागे से बाँध देना। बालक को बालपन ही फबता है। युवा को युवावस्था ही फबती है। बूढ़े को बुढ़ापा ही फबता है। बालक का बड़ों की भाँति व्यवहार करना बालपन के अद्वितीय सुखों तथा अनुभवों से वञ्चित रहना, अपने आप को दुखी प्राणी बना देना है। अनेक बालक अपने जीवन के इस अमूल्य कोष को बड़ों की प्रसन्नता की वेदी पर बलिदान कर देते हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपनी इच्छाओं तथा स्वभाव के विरुद्ध सदा ही दूसरों का स्वाँग रच कर प्रसन्न रह सके। जिसे यह पराधीनता सहनी पड़े, उसके दुःख की कथा ही बालकों की कथा है।

## बड़े और बालकों की गतियों में अन्तर

यदि माता-पिता अपनी जिम्मेदारी को भली प्रकार निभाना चाहते हैं तो उनका यह कर्तव्य है कि वे बालक की गतियों के सम्बन्ध में अपने दोषपूर्ण तथा अहम्पूर्ण व्यवहार को तिलाञ्जलि दें तथा बालक को बाल-जीवन की प्रसन्नता का अनुभव कराने में उनके सहायक हों। अहम् से छुटकारा पाते ही माता-पिता को पता लगेगा कि बालक तथा उनके काम करने के उद्देश्यों में बहुत अन्तर है। हम बड़ों की गतियाँ बाहरी गतियों की पूर्ति के लिये होती हैं। हम इसलिये चलते हैं कि हमें किसी विशेष स्थान पर पहुँचना है। बालक इसलिये चलता है कि वह चलने की गति पर प्रभुत्व पाकर अपने मन का विकास करता है। हम इसलिये बोलते हैं कि हम दूसरों द्वारा कोई उद्देश्य पूरा करवा सकें। बालक एक-एक शब्द का अनेक बार इसलिये उच्चारण करता है कि वह शब्दों पर प्रभुत्व पा

सके, तथा पुनरावर्तन करके अपने स्नायुओं को बलवान बना सके। बालक के आरम्भ-काल की सब गतियों का उद्देश्य हम बड़ों की गतियों से पूर्णतया भिन्न होता है। माता-पिता इस भेद को नहीं समझते। इसलिये बालक की गतियों के साथ वे अपनी गतियों का मेल नहीं बिठा सकते। यदि माता को कहीं जाना हो तो वे अपनी गति के अनुसार चलने का समय नियत करते हैं तथा बच्चों को गोद में उठा कर चल पड़ते हैं। बालक स्वयं चलना चाहता है, अपनी गति व उद्देश्यों के अनुसार। उसके चलने का उद्देश्य नियत समय पर पहुँचना नहीं। ऐसे समय में माता-पिता तथा बालक के उद्देश्य में संघर्ष होता है और बेचारे बालक को सदा मुँह की खानी पड़ती है। वह निर्बल है न! निर्बलों के साथ यही होता है। बालक स्वयं कङ्घी करना चाहता है। उसका उद्देश्य अपने मन का विकास तथा तृप्ति है। परन्तु माता को बालक का स्वयं कंघी करना पसन्द नहीं। वह उसे टेढ़ी-मेढ़ी माँग के साथ बाहर किस प्रकार ले जाए? उसकी शान में जो फर्क आता है। इसलिये वह बालक के बाल सँवारने की गति का उत्तर दो-चार चाँटे लगा कर, अथवा बुरा-भला कह कर उसकी रचना को नष्ट करके इच्छानुसार बाल सँवार देती है। बालक का जीवन उसका अपना तो है नहीं! वह तो स्वाँग है। माता-पिता की गुड़िया है। उसके अधिकार का क्या मतलब? माता-पिता की जिम्मेदारी यही है कि बालक को उसके बालपन की गतियों से वञ्चित रक्खें, उसे अपनी इच्छाओं का खिलौना समझ कर अपनी इच्छानुसार दूध पिलावें, स्नान करावें, वस्त्र पहनावें। यही तो उनके प्रेम का प्रकाश है, जिसे मूर्ख मनोविज्ञानी अत्याचार करते हैं।

---

# बालक के प्रारम्भिक वर्ष

बालक सृष्टि की जड़ है। बालक इन्सानियत की बुनियाद है। बालक घर में आई एक बड़ी हस्ती है। छोटी-सी चीज समझ कर उसकी उपेक्षा न करें! बालक की भी आत्मा होती है—वह आत्मा, जिस पर सारी दुनिया की इमारत खड़ी की जाती है। इस छोटे-से बालक की आत्मा को ठुकरा देना या झिड़क देना उसकी विकसित होने वाली आत्मा की हत्या कर देना है।

## प्रथम छः वर्ष का महत्त्व

बाल-जीवन के प्रथम छः वर्ष बहुत कीमती और जरूरी हैं। मैडम मोएटीसोरी ने इन सालों को बहुत महत्त्वपूर्ण बतलाया है। उन्होंने इन वर्षों के दो भाग किये हैं—जन्म से तीन और तीन से छः। प्रथम तीन वर्षों में बच्चा प्रत्येक चीज को जानना चाहता है। छोटी-से-छोटी चीज को वह बड़े ध्यान से देखता है। तीन-चार महीने पर ही वह हमारी बातों को ध्यान-पूर्वक सुनता है। हमें बातें करते देख कर हँसता है। उसी तरह मुँह बनाता है। ऊँ-ऊँ करता है। आठ माह का होने पर दो अक्षरों के शब्द जैसे—मामा, बाबा आदि बोलने लगता है। एक वर्ष से दो वर्ष तक बच्चा भाषा को ग्रहण करता है। हर एक चीज की जानना चाहता है। सवालों की झड़ी लगा देता है। उसके सवालों का जवाब देना चाहिये। यह कह देने से काम न चलेगा कि उसके सवालों का जवाब देने के लिये हमारे पास समय नहीं है। अगर हमारे पास समय नहीं है तो बच्चा पैदा करने की तकलीफ क्यों उठाई? बालक के सवालों का हमें जवाब देना चाहिये। बार-बार पूछने पर भी उकताना या झुँझलाना नहीं चाहिये। बालक को नादान समझना हमारी भूल है।

## बालक की तीव्र जिज्ञासा

इस समय बच्चा सब कुछ सीख जाता है। दो वर्ष के बाद बालक में भाषा का इतना विकास हो जाता है कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हम हैरान होंगे कि बालक ने यह सब कुछ सीख कैसे लिया ? तीसरे वर्ष में बच्चा कठिन सवाल पूछने लगता है। पहले हम खुद बताया करते थे। अब बच्चा आवाज दे देकर हमारा ध्यान अपनी ओर खींचता है। अगर हम उसके सवालों का जवाब नहीं देंगे, तो वह झुँझलायेगा और निराश होकर रोने लगेगा।

यह ठीक है कि बच्चे के बहुत से सवालों का जवाब हम नहीं दे सकते। ऐसी अवस्था में उसके सवालों का जवाब मालूम करके फिर उसे बताना चाहिये। लेकिन टालमटोल करके उसकी अन्दरूनी भूख को मारना नहीं चाहिये। यह बालक के भाषा-विकास का समय है। इन तीन वर्षों में सीखी हुई भाषा का प्रयोग करके वह अगले तीन वर्षों में उसे अधिक उन्नत और विकसित करेगा।

## बालक को स्वतंत्र रूप से काम करने दें

अब चलने-फिरने के बारे में देखिये। अभी बच्चा तीन मास का ही होता है कि हाथ-पाँव चला कर उसे पकड़ने का यत्न करता है। लेकिन अपने पर काबू न होने के कारण असफल रहता है। छः माह का होने पर जब वह किसी सुन्दर वस्तु को देखता है तो रेंग कर उसके पास जा पहुँचता है। ये बातें बच्चा किसी से सीखता नहीं। वह जो कुछ करता है, अन्तःप्रेरणा से करता है। हमें उसके रास्ते में कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिये। जमीन पर गद्दे बिछा कर उसके चलने-फिरने के लिये स्थान बना देना चाहिये। उसके कमरे में और आसपास रंगीन रिबन लटका देने चाहिये और सुन्दर फूलों के फूलदान रख देने चाहिये। उसके

कमरे का सामान सुन्दर रंग का और चमकदार होना चाहिये। रात के समय उसके कमरे में नीले या हरे रंग की रोशनी होनी चाहिये, जिससे बच्चे की आँखें खराब न हों। ये बालक के दिल बहलाने के तरीके हैं जिनसे उसका विकास होता है।

बच्चा बहुत चौकन्ना होता है। जरा-सी आहट सुनते ही वह करवट बदल लेता है। उसे रंगीन बजने वाला झुनझुना देना चाहिए। दाँत निकलने के समय बच्चे को हाथी दाँत की माला, छल्ले और रबड़ के खिलौने देने चाहिए। अगर बच्चा इन्हें तोड़-फोड़ दे, तो उस पर जरा भी नाराज न होना चाहिए।

छोटा बच्चा कई प्रकार के खेल खेलता है। उसके खेलों में भाग लेना चाहिए। एक ही खेल को बार-बार खेलना, एक ही सवाल को बार-बार पूछना बालक का स्वभाव है। इससे घबराने या तंग होने की आवश्यकता नहीं है। यदि बच्चा एक खिलौने को चालीस बार भी गिराता है, तो नीचे से उठा कर उसे पकड़ा देना चाहिये। यदि एक बार भी आपने नहीं कह दिया तो बच्चे का खिला हुआ चेहरा मुरझा जायेगा। उसका छोटा-सा दिल टूटे हुए गजरे की तरह चूर-चूर हो जायगा। उसे फिर ताजा करना असम्भव होगा।

जब बच्चा घुटनों के बल चलने लगे तो चलने-फिरने की उसे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। रास्ते में इधर-उधर पड़ी हुई चीजों को एक तरफ कर देना चाहिए, ताकि उनसे टकरा कर उसे चोट न लग जाय। गन्दी चीजें भी उसके रास्ते से हटा देनी चाहिए, ताकि उन्हें वह मुँह में न डाल सके। टूटने-फूटने वाली चीजें दूर रख देनी चाहिए, ताकि टूट-फूट जाने पर उसको बड़े-बूढ़ों के गुस्से का शिकार न बनना पड़े। इस अवस्था में घुटनों के बल चलना बच्चे का सब से बड़ा काम है। यही उसका खेल है, यही उसका व्यायाम है।

बच्चा कदम बढ़ाता है, चलना सीखता है। वह हर समय चलना चाहता है। वह हर कदम पर गिरता है। हजार बार गिरने पर भी वह हिम्मत नहीं हारता। उसी लगन से उठ कर वह फिर चलने लगता है। इसलिये कमरे में कैद न करके उसको आजादी से चलने-फिरने का मौका देना चाहिए। बच्चे को सर्दी-गर्मी से बचाना हमारा फर्ज है। लेकिन अपने क्षणिक सुख और आराम के लिये उसकी भावनाओं को कुचलना, उसे दबा कर रखना हमारा हक नहीं है।

## बालक की और हमारी सैर में अन्तर

डेढ़-दो साल का बच्चा लम्बी सैर करना पसन्द करता है। सैर कराते समय हमारा यह ध्येय होना चाहिये कि बच्चे को हम अपने साथ सैर करने न ले जायें, बल्कि हम बच्चे के साथ सैर करने जायँ। अगर हमें सैर करना है तो हम अकेले जा सकते हैं। बच्चे को साथ ले जाने की जरूरत नहीं। हमारी सैर में और बच्चे की सैर में बड़ा अन्तर है। हम जल्दी-जल्दी चलना चाहते हैं, और बच्चे को जल्दी-जल्दी चलने के लिये मजबूर करते हैं। छोटी-छोटी टाँगों और छोटे-छोटे कदमों से हम अनहोनी बातों की आशा रखते हैं। अपनी उन्नति के लिये बच्चे ने आप ही कानून बनाये हैं। हमारे बनाये हुए कानूनों पर वह नहीं चल सकता। बच्चा अपनी टाँगों और आँखों दोनों से सैर करना चाहता है। चलते-चलते बच्चा जब दो कुत्तों को खेलते देखता है, तो वहीं खड़ा हो जाता है, और उनके बारे में अनेक सवाल पूछता है। आगे चल कर चार-पाँच बच्चे खेलते नजर आते हैं, तो वहीं ठहर जाता है। कुछ दूर और चल कर पानी को देख कर उछल पड़ेगा और पुकारने लगेगा—'माँ, पानी' इस प्रकार घण्टे-डेढ़ घण्टे में दो-तीन फर्लांग की सैर कर सकेगा। हमें यह न समझना चाहिये कि यह समय व्यर्थ ही गया। इस प्रकार की सैर बच्चे की शिक्षा का आवश्यक अंग है। इसलिये धैर्य और शान्ति से काम लेना चाहिये। साल दो-साल बाद बच्चा

बड़ा होकर स्वतन्त्र हो जायगा, और तब आपको सैर कराने की आवश्यकता न होगी। वह आप ही सब कुछ कर लेगा। हम अपने आराम की खातिर बच्चे को बच्चागाड़ी में बिठा देते हैं, या गोद में ले लेते हैं। इससे बच्चे को बड़ी हानि होती है। उसकी इच्छाएँ चकनाचूर हो जाती हैं। उसका विकास रुक जाता है। वह ज्ञान से वञ्चित रह जाता है।

## बालक एक क्रिया को बार-बार करता है

जन्म के समय बच्चा पराधीन होता है। शुरू-शुरू में वह करवट भी नहीं ले सकता। लेकिन जब वह उठ कर बैठने लगता है, या चारपाई पकड़ कर खड़ा होने लगता है, तो इन क्रियाओं को बार-बार बड़े चाव से करता है। इन क्रियाओं को करके बालक बड़ा खुश होता है। बालक को ये क्रियाएँ करते देखकर पहले तो हम खुश होते हैं, लेकिन फिर उकता जाते हैं। हम यह महसूस करते हैं कि बालक अब थक गया है। उसने अपना चाव पूरा कर लिया है। अब उसे बस करना चाहिये। पहले तो हम उसे प्यार से मना करते हैं, रोकते हैं और उसके न मानने पर जबरन पकड़ कर लिटा देते हैं। बालक रोने लगता है। हम उसे छोड़ देते हैं और वह फिर अपने काम में लग जाता है।

हम दुनिया को देख चुके हैं, अनुभव कर चुके हैं। लेकिन बालक को अभी इस दुनिया को देखना और समझना है। जन्म के पहले ही दिन से वह अपने आस-पास की दुनिया को देखना और परखना शुरू कर देता है। उसकी जिज्ञासा का दायरा आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता जाता है। वह जिस नई चीज को देखता है, उसे खूब अच्छी तरह देखता और परखता है।

इसके अलावा बच्चे की यह कोशिश होती है कि जो काम वह कर सकता है, उसे खुद ही करे। पराधीनता से वह छुटकारा पाना चाहता है। अगर वह चलना सीखता है तो गिरता-पड़ता घुटने-टखने और मुँह-



बालक पानी उड़ेल रहा है



[illegible] सफाई के लिए तैयारी कर रहा है

उसका निरीक्षण करना चाहता है। उसका रहस्य मालूम करके अपनी जिज्ञासावृत्ति को तृप्त करना चाहता है। एक-दो बार मिट्टी चख कर खाकर खुद ही छोड़ देगा। अगर नहीं छोड़ता और मिट्टी खाने का आदी हो जाता है, तो मालूम करें कि बच्चे के मिट्टी खाने का असली कारण क्या है? क्या वह कोई चीज मुँह में डाल कर चूसना चाहता है या उसके शरीर में किसी क्षार की कमी है? जो भी कारण हो, उसका ठीक-ठीक पता लगा कर उसी के मुताबिक काम करें।

## बालक को चढ़ने-उतरने का अवसर दें

बच्चा खुद चारपाई से नीचे उतरना चाहता है, या कुर्सी अथवा जीने पर खुद चढ़ना चाहता है तो उसकी इस इच्छा को पूरा करें, रोकें हरगिज नहीं। अगर आपने रोका तो उसकी यह इच्छा और भी तेज हो जायगी। हमारे सामने कोशिश करने के बजाय हमारी गैरहाजिरी में परीक्षण करेगा। ऐसी हालत में चोट आदि लगने का खतरा है। यह कभी न भूलिये कि बालक को चढ़ने और उतरने में बड़ा मजा आता है। वह बार-बार इस क्रिया को किया करता है, और खुश होता है।

## बड़ों के अच्छे-बुरे व्यवहार का बालक पर असर

आपका बच्चा बड़े चाव से आपके पास आता है। आप बक्स या सूटकेस से उसके कपड़े निकाल रहे हैं। बच्चा अपने कपड़े देख कर प्रसन्नता से उछल पड़ता है—"माता जी, मेला फलाक" यह कहता हुआ वह उसे अपने हाथ से खींचता है। फ्रॉक नीचे जमीन पर गिर जाता है। आप क्रोध में आकर बच्चे को एक थप्पड़ लगा देते हैं। "अरे, यह क्या कर दिया। छिः! छिः!! सारा फ्रॉक गन्दा कर दिया। चल भाग यहाँ से। खबरदार! फिर कभी हाथ लगाया तो।" अपने सूटकेस और फ्रॉक को देख कर उसे जो खुशी हुई थी, उसका आपने बात की बात

में खून कर दिया। कितनी माताएँ हैं, जो फ्रॉक को खराब होते देख कर प्यार से कहती हैं—"हाँ, मुन्ना ! यह सुन्दर फ्रॉक तुम्हारा ही है। कल ताँगे पर चलेंगे, तब पहनना। अब ठीक करके अपने सूटकेस में रख दो।" कितना जादू का असर होता है इन मीठे शब्दों का। बच्चा खुशी के मारे फूला नहीं समाता। वह कहता है—"ताँगे पर, कल, अच्छा।"

## काम करने से रोक कर बालक का दिल न तोड़ें

आपका बच्चा अपना फ्रॉक खुद पहनना चाहता है। आप उसे पहनने नहीं देते। आप उसे खुद पहनाना चाहते हैं। लेकिन बच्चा इसे पसन्द नहीं करता। बच्चे को अपना फ्रॉक खुद पहनने दें। पहनने का उसे तरीका बताएँ। अगर वह न पहन सकेगा तो खुद ही दौड़ कर आपके पास आयेगा। उस समय यह कहकर उसे शर्मिन्दा न करें—"बस पहन लिया। मैंने कहा था, नहीं पहना जायगा। लेकिन तू कब किसी की सुनता है।" ऐसा शब्द सुन कर बालक का दिल टूट जाता है। वह अपने को हीन समझने लगता है। अपने को तुच्छ समझने का बालक को मौका न दें।

बालक को अपने सब काम आप करने दें। आप तो उसके लिये आवश्यक साधन भर जुटा दें। प्यार-प्यार में काम करने का तरीका सिखा दें। उसके कामों का मजाक न उड़ायें। परिणाम को अपनी दृष्टि से न देखें, बल्कि बालक की ही दृष्टि से देखें। बालक जब काम कर रहा हो तो उसके काम में जरा भी विघ्न न डालें। जैसा वह कर सकता है, उसे खुद ही अपने प्रयत्न से करने दें। उसकी धीमी रफ्तार या गलत तरीके की परवा न करें। उसे अपने अनुभव से सीखने दें। उसे अपने पैरों पर खड़ा होने दें। उसके फूटते हुए स्रोत को न रोकें। उसे अपनी कैद में रखने की कोशिश न करें। अगर वह आजादी चाहता है तो उसे आजाद होने दें। जबरन अपनी सलाह उस पर न लादें। सहायता माँगने पर ही सहायता दें। सलाह माँगने पर ही सलाह दें। जितनी खुशी

बालक को अपने हाथों काम करके होती है, उतनी किसी से करा कर नहीं होती। अगर हार कर बालक काम करना छोड़ दे तो भी उसे उत्साहित करें, निराश न करें।

## बालक के विश्वासपात्र बनें

बालक को रक्षा और बचाव की जिम्मेदारी आप पर है। अगर शुरू से ही आपने बच्चे का साथ दिया है, तो वह आपकी सलाह को जरूर मानेगा। अगर आप उसकी बात सुनते रहे हैं, उसकी इच्छाओं और रुचियों को पूरा करते रहे हैं, उसके काम में दिलचस्पी लेते रहे हैं, उसे उत्साहित करते रहे हैं, उसके कामों की दाद देते रहे हैं, उसके विश्वासपात्र बने हुए हैं तो वह आपकी नेक सलाह को जरूर मानेगा। लेकिन अगर आप हमेशा नहीं से काम लेते हैं, तो आपका बच्चा आपकी नेक सलाह की ओर भी ध्यान न देगा। हमेशा की मनाही का यही नतीजा निकलता है। रोक-टोक से बालक की रुचियाँ कुचली नहीं जा सकतीं। फूटते हुए स्रोत का रुख किसी दूसरी तरफ मुड़ जाता है। बच्चा गलत रास्ता अख्तियार कर लेता है। शरारत करने मे उसे मजा आता है। माता-पिता की आज्ञा का वह उल्लंघन करता है। जिस बात से रोका जाय, उसे ही करता है। रोक-टोक से बालक की मनोवृत्ति ऐसी ही बन जाती है। यह सब कुछ हमारे गलत व्यवहार का ही परिणाम है।

## बड़े होने पर अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए

ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता है, उसका अनुभव बढ़ता है, उसकी इच्छाओं और रुचियों में भी वृद्धि होती है। इसलिये अब उसे पहले से ज्यादा आजादी मिलनी चाहिये। दो-तीन साल का बच्चा अपना अलग सूटकेस या ट्रङ्क चाहता है, जिसमें अपने कपड़े आप रख सके और आप ही निकाल सके। वह आपकी इच्छा के अनुसार उनकी ठीक तह न कर सकेगा, आपकी तरह सजा कर भी न रख सकेगा। लेकिन इसकी आप

परवा न करें। जब तक वह आपसे मदद न माँगे, आप उसके काम में दखल न दें। बच्चे का सूटकेस ऐसी जगह रखें, जहाँ उसका हाथ आसानी से पहुँच सके।

कीलें और खूँटियाँ बालक के बराबर की ऊँचाई पर लगाएँ, ताकि उन पर अपने कपड़े वह आप लटका सके, और उतार सके। बच्चे को अलग प्याला, गिलास, थाली, चमचा और कटोरी आदि सब चीजें दे दें। इन चीजों पर उसका पूरा अधिकार होना चाहिये। वह उन्हें अपनी खुशी से जहाँ चाहे रखे, जिस तरह चाहे इस्तेमाल करे। स्थान की सफाई के लिये एक छोटी झाड़ू या ब्रुश दे दें। दोस्तों को बिठाने के लिये दरी या कुर्सी दे दें। और भी जरूरी सामान उसके लिये जुटा दें। तात्पर्य यह कि उसे हर प्रकार से स्वतन्त्र कर दें ताकि स्वतन्त्र रूप से वह अपना विकास अपने आप कर सके।

## शारीरिक विकास

पहले बारह महीनों में बच्चे के शरीर के प्रत्येक अंग में बड़े-बड़े परिवर्तन होते हैं। इन ३६५ दिनों में एक नन्हें चूँ-चूँ करते बालक से एक उछलता-कूदता, शोर मचाता बालक बन जाता है। इन दिनों में बालक प्रति घण्टा, प्रति दिन खूब फलता-फूलता और उन्नति करता है। प्रत्येक बच्चे की शारीरिक और मानसिक उन्नति की गति भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु साधारणतया यह उन्नति इस प्रकार होती है :—

**पहला दिन**—बच्चा अधिकतर सोया रहता है, और किसी ओर ध्यान नहीं देता।

**पहला सप्ताह**—सिर्फ छाया में आँखें खोलता है। सप्ताह के अन्त तक धीमी रोशनी में भी आँखें खोल लेता है।

**पहला महीना**—अपने आस-पास दृष्टि दौड़ाता है, प्रसन्नता प्रकट करता है, हिलती हुई वस्तुओं को देखता है, आवाज सुनता है, सूँघने और चखने लगता है।

**दूसरा महीना**—बच्चा ध्यान से देख सकता है, माता-पिता को पहचान लेता है, देख कर मुस्कराता है, हिलती हुई चीजों को ध्यान से देखता और आवाज को ध्यान से सुनता है।

**तीसरा महीना**—हँसता है, दूसरों की ओर फिर कर देखता है, जोर से हाथ-पाँव मारता है, जितनी देर जागता रहता है, चुस्ती से हिलता-डुलता है।

**चौथा महीना**—अपना सिर सँभाल लेता है, हिलती चीजों से खेल कर खुश होता है, नये आदमियों के पास जाने में झिझकता है।

**पाँचवाँ महीना**—बैठ कर खुश होता है, और जोर-जोर से हँसता है।

**छठा महीना**—किसी भी चीज को अपने हाथ से मुँह में डाल लेता है। पाँवों की उँगलियाँ मुँह में डाल लेता है। वजन दुगुना हो जाता है।

**सातवाँ महीना**—शोर मचा कर खुश होता है, चीजें फेंकता है। दाँत निकलने लगते हैं।

**आठवाँ महीना**—आप उठ कर बैठ सकता है, और सीधा भी बैठ जाता है।

**नवाँ महीना**—घुटनों के बल चलना शुरू कर देता है।

**दसवाँ महीना**—चारपाई या कुर्सी को पकड़ कर खड़ा होने की कोशिश करता है।

**ग्यारहवाँ महीना**—किसी चीज के सहारे खड़ा होता है, और कुछ देर बिना सहारे भी खड़ा हो जाता है।

**बारहवाँ महीना**—वजन तिगुना हो जाता है। छः दाँत निकल आते हैं। कुछ शब्द बोल सकता है। खुद-बखुद कदम उठा सकता है।

**एक वर्ष से सवा वर्ष**—बच्चा चलना सीख जाता है। खड़ा होकर आप बैठ सकता है। अपने हाथ में पेन्सिल पकड़ कर लकीर खींचने का प्रयत्न करता है। अपनी कटोरी या गिलास हाथ में पकड़ कर पानी पी सकता है। कपड़े पहनाने के समय अपने हाथ-पाँव ठीक कर लेता है।

**सवा वर्ष से डेढ़ वर्ष**—तलुए की हड्डियाँ जुड़ जाती हैं। बच्चा अकेला खड़ा हो सकता है, चल सकता है। चार-पाँच शब्द बोल सकता है। अपने हाथ में चम्मच पकड़ कर खाने की कोशिश करता है।

**डेढ़ से पौने दो वर्ष**—चारपाई या कुर्सी पर आप चढ़ सकता है। पेन्सिल से लकीरें खींच सकता है। अपनी आँखें, नाक, मुँह बना सकता है। चम्मच लेकर साधारणतया अच्छी तरह खा सकता है। पुस्तक के पृष्ठ उलट-पुलट करके चित्र देख सकता है। अपने जूते आप पहनना चाहता है, पर सफलता कम मिलती है।

**पौने दो से दो वर्ष**—अकेला काफी चल-फिर सकता है। उलटा भी चल सकता है। आम चीजों की तसवीरें देख कर बता सकता है। छोटे-छोटे दो शब्दों के वाक्य बोल सकता है। बात सुन कर दोहरा सकता है। जो चीज खाना चाहता है, माँग लेता है। टट्टी की हाजत हो तो बता सकता है।

**दो वर्ष का बच्चा**—बहुत कुछ कर सकता है। दौड़ सकता है। लकड़ी के पाँच-छः टुकड़े (ब्लाक) एक दूसरे के ऊपर रख कर बुर्ज बना सकता है। उनको आगे-पीछे रख कर गाड़ी बना कर चल सकता है। कहानियाँ बड़े चाव से सुनता है। किसी घटना का अपनी तोतली बोली में वर्णन कर सकता है। मिट्टी व रेत में खेल कर बड़ा खुश होता है। दो साल के बच्चे का पेशाब आम तौर पर कपड़ों में नहीं निकलता। करवाने

पर करना सीख जाता है। सोलह दाँत निकल आते हैं। वजन जन्म के समय से चौगुना हो जाता है।

## वजन और लम्बाई

(१) चार-पाँच महीने के बच्चे का वजन जन्म के समय के वजन से तकरीबन दुगुना हो जाना चाहिये। (२) एक वर्ष के बच्चे का वजन जन्म के समय के वजन से तिगुना हो जाना चाहिये। (३) आमतौर पर स्वस्थ बच्चे का वजन जन्म के समय तीन सेर से साढ़े चार सेर तक होना चाहिये। कुछ बच्चों का वजन इससे अधिक भी होता है। (४) कुछ बच्चों का वजन जन्म के समय डेढ़ सेर के करीब ही होता है। ठीक ढंग से लालन-पालन करने से ये बच्चे अच्छे रह सकते हैं। (५) लड़के का वजन जन्म के समय लड़की के वजन से अधिक होता है। लड़के का चार-साढ़े चार सेर और लड़की का पौने चार सेर अच्छा होता है। (६) बहुत से बच्चों का वजन पहले तीन दिन में कम हो जाता है, और फिर बढ़ जाता है। (७) दाँत निकलने के समय, दूध छुड़ाने के समय, और गर्मी के दिनों में कुछ दिनों के लिये बच्चों का वजन घट जाता है। (८) केवल वजन ही नहीं देखना चाहिये। यह तो बच्चे की उन्नति का एक चिह्न है। वजन बढ़ाना ही हमारा कर्तव्य नहीं होना चाहिये। फूले हुए मांस से कुछ फायदा नहीं। बच्चे के पुट्ठे और हड्डियाँ मजबूत होनी चाहिये। (९) पहले वर्ष में बच्चा हर माह अपना वजन बढ़ाता है। परन्तु आने वाले वर्षों में वजन की रफ्तार घटती जाती है। दूसरे वर्ष में तीन चार सेर और चौथे वर्ष में डेढ़ दो सेर बढ़ता है।

लम्बाई की औसत परिवार पर निर्भर होती है। परन्तु साधारणतया बच्चे पहले साल में अपने जन्म की लम्बाई से ९ इञ्च बढ़ जाते हैं। आम-तौर पर साधारण बच्चा अपने पहले जन्मोत्सव के समय २९-३० इंच लम्बा होना चाहिये, और दूसरे उत्सव पर लम्बाई ३३-३४ इंच होनी

चाहिये। उसके बाद उसकी लम्बाई उसके परिवार पर निर्भर होती है। परन्तु फिर भी बच्चे को वर्ष में दो-तीन इञ्च अवश्य बढ़ना चाहिये।

## वजन और लम्बाई का चार्ट

| अवस्था | वजन सेर छटाँकों में | लम्बाइ इञ्च म. |
|---|---|---|
| जन्म के समय | तीन सेर सवा दस छटाँक | १९॥ |
| एक माह | चार सेर दो छटाँक | २०॥ |
| दो माह | पाँच सेर पौने दो छटाँक | २१ |
| तीन माह | पाँच सेर सवा तेरह छटाँक | २२ |
| चार माह | छः सेर ग्यारह छटाँक | २३ |
| पाँच माह | सात सेर पौने पाँच छटाँक | २३॥ |
| छः माह | सात सेर साढ़े बारह छटाँक | २४ |
| सात माह | आठ सेर सवा चार छटाँक | २४॥ |
| आठ माह | नौ सेर | २५ |
| नौ माह | नौ सेर साढ़े ग्यारह छटाँक | २५॥ |
| दस माह | नौ सेर साढ़े पन्द्रह छटाँक | २६ |
| ग्यारह माह | दस सेर सवा तीन छटाँक | २६॥ |
| एक वर्ष | दस सेर पन्द्रह छटाँक | २७ |
| दो वर्ष | तेरह सेर दस छटाँक | ३८ |

ये वजन बिल्कुल पूरे नहीं, अनुमानित हैं।

## नींद और विश्राम

जन्म के बाद बच्चे की सब से पहली आवश्यकताएँ हैं—गरमाई, विश्राम, खामोशी और नींद। बच्चे के आस-पास शोर-गुल कतई नहीं होना चाहिये। आराम के लिये सोना बड़ा जरूरी है। जन्म लेने के बहुत

समय बाद तक बच्चा सोया ही रहता है, और सोया रहना चाहिये । एक-डेढ़ महीने तक बच्चा केवल दूध पीने के लिये ही जागता है । अवस्था के अनुसार रात-दिन के चौबीस घण्टों में बालक की नींद इस प्रकार होनी चाहिये—

| | |
|---|---|
| पहला महीना | २२ घण्टे |
| दूसरा महीना | २१॥ घण्टे |
| दो से तीन माह तक | २१ घण्टे |
| तीन से पाँच माह तक | २० घण्टे |
| पाँच से सात माह तक | १६ घण्टे |
| सात से बारह माह तक | १८ घण्टे |
| एक वर्ष से ४ वर्ष तक | १५ घण्टे |
| चार वर्ष से अधिक | १३ घण्टे |

गहरी नींद के लिये बालक के नीचे गरम और गुदगुदा बिस्तर चाहिये । कपड़े गरम तो हों, लेकिन हल्के हों । तंग और बहुत से कपड़े बालक को तंग करते हैं । लाड़-प्यार में आकर सोये हुए बालक को कभी नहीं जगाना चाहिये । उसकी नींद और आराम में खलल डालना हानिकारक है । इस समय माता-पिता को बहुत संयम से काम लेना चाहिये । इसके सामने अपनी वासना पर काबू रखना चाहिये । बालक चाहे कितना ही नन्हा क्यों न हो, वह हर एक घटना को ध्यान से देखता है और अपनी बुद्धि के अनुसार उसका मतलब भी निकालता है । सोया हुआ बालक भी कई बार अपनी आँखें खोल कर इधर-उधर देखता है । इसीलिये मनोविश्लेषकों का मत है कि बालक को शुरू से ही अलग कमरे में सुलाना चाहिये । पहले साल अगर अलग कमरे में न सुलाया जाय तो कम से कम उसकी खाट तो अवश्य ही अलग होनी चाहिये ।

## बालक की खाट

बालक की खाट बड़ों की खाट जैसी नहीं होनी चाहिये। उसके आस-पास जंगला होना चाहिये जिससे करवट लेते समय बालक नीचे न गिर जाय। बालकों का सिर बड़ा नरम होता है। पहले साल उसके सिर की हड्डियाँ जुड़ी हुई नहीं होतीं। इसलिये नीचे गिरने से उसके दिमाग को हानि पहुँचती है। बाजार से बेबीकाट (बालक की खाट) बनी बनाई मिल सकती है। बेंत की या बाँस की खाट हल्की होती है। लकड़ी की बड़ी और भारी होती है। बेबीकाट के चारों तरफ जंगला होता है। एक तरफ का जंगला ऊपर-नीचे हो सकता है ताकि बालक को आसानी से लेटाया जा सके। यदि बालक के लिये बेबीकाट न खरीदी जा सके तो पहले दो वर्ष बालक को ऐसी खाट पर लेटाया जाय, जिस पर से वह गिर न पड़े। तीसरे वर्ष के बाद बालक को ऐसी खाट पर सुलाएँ, जिस पर से बालक खुद उतर-चढ़ सके।

## ठीक देख-रेख न होने पर नींद में कमी

ऊपर नींद का जो समय दिया गया है, वह अनुमान से दिया गया है। बिल्कुल ठीक अन्दाजा देना असम्भव है, क्योंकि प्रत्येक बालक स्वभाव और आदत में दूसरे से भिन्न होता है। यदि कोई बालक दिये हुए समय से बहुत कम सोता है, या सोते-सोते डर कर जाग उठता है, या रात को बहुत बार जागता है, बड़ी कठिनाई से सोता है, लोरी देकर सुलाना पड़ता है, तो समझना चाहिए कि उसकी देख-रेख ठीक नहीं हो रही है या उसकी सेहत में कोई खराबी है। यह खराबी शीघ्र दूर करनी चाहिये।

## स्वस्थ बालक स्वयं सो जाता है

"जो बालक सोते समय माता-पिता को तंग करते हैं, उनके लिये अधिकतर माता-पिता ही जिम्मेवार होते हैं। शुरू से ही बालक को हिला-

झुला कर सुलाने की आदत न डालें। स्वस्थ बालक अपने आप आराम से सो जाता है। बालक को भूखा न रखें, उसे पूरी और स्वास्थ्यप्रद खुराक नियत समय पर दें। यदि रात को बालक जाग जाय तो दूध कभी न पिलाएँ, (दस-बारह और पाँच-छः के बीच) सिर्फ थोड़ा पानी पिला कर सुला दें। पानी मौसम के अनुसार गरम या ठण्डा होना चाहिये।"

## गोद में सुलाने की आदत मत डालिए

आरम्भ से ही बालक को चारपाई पर लिटा कर सोने की आदत डलवाएँ। अपनी गोद में सुला कर फिर चारपाई पर सुलाने की आदत बड़ी खराब है। छोटी उम्र में तो यह चालाकी चल जायगी। लेकिन बड़ा होने पर बालक गोद में सोने के लिये ही जिद करेगा। भूल कर भी बालक को ऐसी आदत न डालें। दादी, नानी, मौसी, बुआ आदि सब को यह बात समझा देनी चाहिये, नहीं तो बाद में बहुत तकलीफ उठानी पड़ेगी। सरदी में ठण्ड से और गर्मी में मच्छर, मक्खी से बचाना चाहिये। सोते समय बालक का मुँह और सिर बिल्कुल खुला रहना चाहिये।

## माँ का दूध सर्वोत्तम भोजन

मनुष्य के बालक के लिये प्राकृतिक भोजन माता का दूध है, जिसका और कोई भी खुराक मुकाबला नहीं कर सकती। गाय का दूध बछड़ी-बछड़े के लिये है। मनुष्य के बालक के लिये वह नहीं बनाया गया। जो बालक माता के दूध पर पलते हैं, उनकी मृत्यु औसतन कम होती है। बीमारी का मुकाबला करने की शक्ति भी इनमें अधिक होती है। बोतलों के दूध पर पले बालकों में यह शक्ति नहीं होती। जन्म से पूर्व बालक को आवश्यकता के अनुसार भोजन माँ के अन्दर से ही मिलता है। उस समय बालक का मेदा काम नहीं करता। जन्म के बाद खुराक बालक के मुँह में से गुजर कर मेदे और आँतों में से होकर जाती है,

और फालतू सब कुछ अन्तड़ियों और गुर्दों के रास्ते बाहर निकल जाता है। बालक का मेदा जन्म के बाद ही काम करना शुरू करता है और आहिस्ता-आहिस्ता दूध हजम करना सीखता है। माँ का दूध पहले कुछ दिन पतला होता है। इसमें क्लोस्ट्रम ( Chlostrum ) अधिक होता है, इसमें खून से मिलते-जुलते पदार्थ ( प्रोटीन ) होते हैं। यह खुराक मेदे की खास सहायता के बिना खून में चली जाती है। एक सप्ताह के बाद माता के दूध में क्लोस्ट्रम की मिलावट कम हो जाती है और दूध गाढ़ा होता जाता है। इतनी देर में बालक का मेदा और दूसरे अंग काम करना सीख लेते हैं। बालक माँ का दूध शीघ्र पचा लेता है। गाय का दूध भारी होता है, क्योंकि उसमें मांस बनाने वाले पदार्थ अधिक होते हैं। माँ के दूध में चिकनाई के कण छोटे-छोटे होते हैं। उनका हजम कर लेना बालक के लिये आसान होता है, लेकिन गाय के दूध में चिकनाई के कण मोटे-मोटे होते हैं जिन्हें पचाना बालक के लिये कठिन होता है। अपनी माँ का दूध चूसने से बालक के मुँह के सब भागों का व्यायाम हो जाता है। उसके जबड़ों में खून अधिक आता है, जिससे दाँत निकलने में सहायता मिलती है। जब बालक अपनी माँ का दूध चूसता है तो वह अपने हाथ-पाँव मारता है, जिससे उसके सारे शरीर की कसरत हो जाती है। अपना दूध पिलाना माता के लिये भी लाभदायक है। इससे बालक के जन्म से पहले जैसी शक्ति वह प्राप्त कर लेती है। गर्भ के समय अधिक खून शरीर के निचले भाग में जाता रहता है। छाती से दूध पिलाने से खून छाती की ओर आता है जिससे शरीर का निचला भाग आवश्यकता के अनुसार सिकुड़ जाता है। माँ का दूध बिल्कुल स्वच्छ होता है। इसमें किसी प्रकार के कीटाणु नहीं होते और जैसा गरम दूध बालक को चाहिये वैसा ही मिल जाता है। बालक की शारीरिक उन्नति के लिये दूध में जिन-जिन चीजों की मिलावट होनी चाहिये, वह माता के दूध में ही पर्याप्त मात्रा में मिल सकती है। डब्बे के तैयारशुदा दूध या और किसी आमबर

के दूध में वह नहीं मिल सकती। अपना दूध पिला कर माता बालक से अधिक स्नेह पैदा कर सकती है, जो बालक के विकास के लिये अनिवार्य है। किसी दूसरी माँ का दूध भी बालक के लिये उतना लाभदायक नहीं हो सकता, जितना कि अपनी माँ का दूध।

यदि माँ का दूध कम हो तो भी बालक को छाती से अवश्य लगाना चाहिये; चाहे उसे बहुत थोड़ा दूध ही क्यों न मिले। उसके बाद दूसरा दूध दिया जा सकता है। दूध ठीक रखने के लिये माँ को स्वास्थ्यप्रद और सन्तुलित भोजन* करना चाहिये।

यदि माँ को कोई शारीरिक या मानसिक रोग हो तो बालक को उसका दूध नहीं पिलाना चाहिये।

## माँ का दूध न मिलने पर बकरी या गाय का दूध

अगर बालक को ऊपर का दूध देना ही पड़े तो बकरी के दूध को फाड़ कर, दही निकाल लिया जाय और पानी बालक को दिया जाय। इसमें खुराक के सभी आवश्यक भाग होते हैं और इसे बालक आसानी से पचा भी सकता है। बकरी का दूध न मिले तो गाय का दूध इसी प्रकार फाड़ कर उसका पानी दिया जा सकता है। जब भी यह पानी देना हो तो ताजा बनाना चाहिये और बनाते समय स्वच्छता का खासतौर से ध्यान रखना चाहिये।

पानी मिलाया हुआ या सौंफ डाल कर उबाला हुआ गाय का दूध भी बालक के लिये अच्छी खुराक नहीं है। दूध में चूने का पानी डालने

*स्वस्थ भोजन देने पर भी माँ का दूध न उतरे तो मगरमच्छ का खारजा (फुजला) जो किसी भी मछुए से आसानी से मिल सकता है, लेकर उसे खूब बारीक पीस लें, और फिर दोनों स्तनों पर एक-एक माशा अच्छी तरह मल दें। जब स्तनों में चींटी सी चलती महसूस होने लगे तो गुनगुने पानी से स्तनों को धो डालें, और थोड़ा-सा दूध निकाल कर फिर बालक को स्तनों से लगाएँ। दूध उतरने लगेगा। यह आजमाया हुआ नुस्खा है। —सम्पादक

से उसमें चूने का अंश आ जाता है और दूध जरा हल्का हो जाता है। लेकिन यह दूध भी फटे हुए दूध के पानी का मुकाबला नहीं कर सकता। किसी रोगी पशु का दूध बालक को भूल कर भी नहीं देना चाहिये।

## दूध पिलाने का क्रम

**पहला दिन**—जन्म के बाद जब बालक और माँ काफी आराम कर चुकें, तब बालक को तीन-चार मिनट दोनों छातियों से दूध पिलाने का प्रयत्न किया जाय। तीन-तीन घण्टे के बाद ऐसा किया जाय।

**दूसरा दिन**—पहले दिन की तरह बालक को शौक से दूध चूसने दिया जाय। यदि दूध न निकले तो उबाले हुए पानी के कुछ चम्मच पिलाये जायँ।

**तीसरा दिन**—तीसरे दिन तीन-तीन घण्टे बाद बालक को काफी दूध पिलाया जाय, ताकि वह भूखा न रहे।

**पहला डेढ़ माह**—नियमित रूप से तीन-तीन घण्टे के बाद नीचे लिखे समय के अनुसार पिलाना चाहिये :—

**सुबह**—छः बजे और नौ बजे।

**दोपहर और उसके बाद**—बारह बजे और तीन बजे।

**शाम को**—छः बजे और फिर रात को दस बजे।

**डेढ़ माह के बाद**—अब चार-चार घण्टे बाद दूध पिलाना चाहिये। प्रातः छः बजे और दस बजे, दोपहर बाद दो बजे, शाम को छः बजे और रात को दस बजे। रात के दस बजे से लेकर प्रातः छः बजे तक दूध बिल्कुल न पिलाया जाय। अगर बालक किसी तरह रात को उठ कर रोने लगता हो, या जाग जाता हो, तो उसे सन्तुष्ट करने के लिये या अपने आराम की खातिर उसे दूध नहीं पिलाना चाहिये। अगर बालक को और कोई तकलीफ नहीं है तो, दो-चार चम्मच गुनगुने पानी को बोतल में डाल कर पिला दें। बालक सो जायगा। लेकिन अग

बालक का वजन बहुत ही कम है, या बीमार है, या किसी कारण से माँ से कुछ समय के लिये अलग रहा है, तो उसे रात के समय दूध पिलाया जा सकता है। बालक का दूध केवल एक ही उबाल का होना चाहिये।

## दूध के बाद रस व चिकनाई

एक वर्ष तक दूध ही बालक के लिये पूर्ण खुराक है। लेकिन इसी समय उसे वे चीजें खिलाने का कुछ अभ्यास कराना चाहिये, जो उसे आगे चल कर खानी हैं। पहले छः महीने में दूध और पानी के सिवा और किसी चीज की आवश्यकता नहीं। इसके बाद बालक के मसूढ़े मजबूत हो जाते हैं और दाँत निकलते समय कठिनाई नहीं होती। फिर धीरे-धीरे सब्जी की तरी देना शुरू कर सकते हैं। तरी में कुछ न डाला जाय। सन्तरे का रस भी लाभदायक है। लेकिन रस देने से अगर बालक की टट्टी का रंग हरा हो जाय तो रस देना बन्द कर देना चाहिये। माता का दूध पीने वाले बालक को पहले महीनों में रस की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन बोतल का दूध पीने वाले बालक को डेढ़ माह बाद सन्तरे का रस देना शुरू किया जा सकता है।

हर अवस्था में बच्चे को उबाला हुआ पानी काफी मिलना चाहिये। शुरू में पानी बोतल में डाल कर देना चाहिये ताकि दूध छुड़ाने* तक उसे बोतल का अभ्यास हो जाय क्योंकि बाद में दूध बोतल से ही पीना होगा।

---

*दूध छुड़ाने का सबसे अच्छा समय नवां या दसवां महीना है। दूध अधिक से अधिक एक साल तक पिलाया जा सकता है। लेकिन यह ध्यान रहे कि एकदम जल्दबाजी से दूध छुड़ाने में बालक को कल्पनातीत हानि पहुँचती है। उसके चरित्र में कितने ही दोष घुस जाते हैं, जो जीवनभर उसका पीछा नहीं छोड़ते। माता के स्तन से दूध पीना बालक की सब से बड़ी खुशी है। इस खुशी से वञ्चित होना बालक के लिए जबरदस्त कुर्बानी है। इसलिये दूध छुड़ाते समय माँ को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। दूध छुड़ाने के दो-तीन महीने पहले से ही एक समय का दूध बन्द करके



बालक साइकिल चलाने का प्रयत्न कर रहा है

बालक को चिकनाई की भी आवश्यकता है । इसके लिये मक्खन सब से अच्छा है । यदि छोटी उम्र से ही अभ्यास कराया जाय तो मक्खन की छोटी-सी गोली बालक निगल सकता है ।

मांस बढ़ाने वाली खुराकों में बालक के लिये दूध अव्वल नम्बर की खुराक है ।

---

एक बार बोतल का दूध पिलाना चाहिये, या टमाटर अथवा सन्तरे आदि का रस देना चाहिये । बालक को जो चीज पसन्द हो, वही देनी चाहिये । इसके अलावा बालक को किसी न किसी प्रवृत्ति में लगाये रखना चाहिये । ऐसा करने से दूध छोड़ते समय बालक को कोई दिक्कत न होगी । कुछ माताएँ अपने बालक को तीन-तीन चार-चार साल तक अपना दूध पिलाती रहती हैं । इससे बालक के विकास में बहुत बाधा पड़ती है । वह पराधीन हो जाता है । दुनिया से बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध लेता है । रुपया पानी की तरह लुटाने लगता है ।

—सम्पादक

# घर में बालक का स्थान

## भोजन-चुनाव में बालक की कोई पूछ नहीं

रोज रसोई किससे पूछ कर बनाई जाती है ? कितनी माताएँ ऐसी हैं, जो रसोई बनाते समय बालक की रुचि-अरुचि का ख्याल रखती हों, सोचती हों कि बालक को कौन चीज रुचेगी ? कौन चीज हजम होगी ?

जब बालक को कोई चीज अच्छी नहीं लगती, हम तुरन्त कह उठते हैं, "यह खाना क्या जाने ? इसे स्वाद का कोई ख्याल हो तब न ?"

जब तीखी या चरपरी चीज खाने से बालक इन्कार करता है, हम चट से कह चलते हैं, "वाह, तीखा खाने की आदत तो डालनी ही चाहिये।"

अगर हमें खारी या खट्टी चीजें अच्छी लगती हैं, तो हम बालक के सामने खारी-खट्टी की हिमायत करते हैं, दाल-भात रुचता है, तो दाल-भात की, और साग-सब्जी रुचती है, तो साग-सब्जी की हिमायत करते हैं।

## बालक को अपने जैसा बनाने की वृत्ति

चूँकि बालक हमसे कद में और डील-डौल में छोटे हैं, उन्हें हमारी हर एक आज्ञा का पालन करना ही चाहिये। लेकिन इससे भी हमें सन्तोष हो तब न ? हम चाहते तो यह हैं कि बालक हमारी-सी आदतों वाला, हमारे से शौकों वाला और हमारी जैसी रुचि-अरुचि वाला बने।

उसे चाहिये कि वह हमारी तरह बैठना सीखे, हमारी तरह बोलना-बतलाना सीखे, हमारी तरह खाना-खिलाना सीखे ! अगर वह यह सब नहीं करता है, तो हमारी समझ में वह निकम्मा है, नालायक है।

हम चाहते हैं कि जैसे हम हैं, हमारे बालक भी वैसे ही बनें। हम खुद अपनी तरफ से यह फैसला दे चुके हैं, कि बालकों के लिये हमारा आदर्श पर्याप्त है। हममें कितने हैं, जो समझते हों कि बालक हमसे भी ऊँची वृत्ति और शक्ति के बन सकते हैं ?

क्या हम जानते हैं कि अपने पूर्व पुरुषों की अपेक्षा हम किन-किन बातों में आगे बढ़े हैं ? क्या हम अपनी इस उन्नति के पूरे इतिहास से परिचित हैं ?

दुनिया आगे बढ़ रही है या पीछे हट रही है ?

## कपड़ों के चुनाव में बालक की उपेक्षा

बालकों के विचारों का हम अपने दिल में कितना ख्याल रखते हैं ? अगर बालक विलायती के बदले देशी कपड़े पहनना चाहता हो तो क्या हमारा अर्थ-शास्त्र उसमें बाधक नहीं होता ? क्या बालक के लिये हम अपनी स्वार्थपूर्ण दृष्टि को भुला सकते हैं ? क्या यह सच नहीं है कि हम बालक को भी नवयुग की नई कल्पनाओं से बचाना चाहते हैं ? क्या कभी हम चाहते हैं कि वह उनसे अनुप्राणित हो ?

कई बालकों को सिर पर टोपी रखना या पैर में जूते पहनना अच्छा नहीं लगता, लेकिन उनके इस तरह नंगे सिर और नंगे पैर घूमने से घर के बड़े-बूढ़ों की बेइज्जती जो होती है !

कुर्ते या कमीज की जेब भी जहाँ बाबूजी चाहेंगे, वहीं लगेगी। इसमें भी बालक की सहूलियत का ख्याल कोई क्यों रखने लगा ?

लड़की की घाघरी और पोलके का रंग ढंग भी तो माँ ही पसन्द करती है न ? कोई मानता है कि बालक में खुद भी पसन्द करने की शक्ति है ? बचपन में हमें कौन कुछ पसन्द करने देता था ? हम बचपन में गुलाम रहे, तो अब हमारे बालकों को भी तो उस गुलामी का कुछ प्रायश्चित्त करना चाहिये न ?

किस समय और किस दिन बालकों को कैसे कपड़े पहनने चाहियें, इसका निर्णय भी तो अनुभवी माता ही न करती है ! जो माँ को अच्छा लगता है, सो सबको अच्छा लगता है। अगर बालक किसी जुलूस या सभा के लायक कपड़े न पहने, तो उसमें बदनामी माँ की ही न होगी ! नन्हें बालक की बदनामी क्या और बेइज्जती क्या !

बालक माता-पिता की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के साधन जो ठहरे ! बालक और हैं भी क्या ? माता-पिता को दम्भ और अभिमान-वृत्ति को सन्तुष्ट रखने के साधन ही न !

बूढ़ी माँ जिन चीजों को खुद नहीं पहन सकती, उन्हें बालकों पर लाद कर खुश होती है। जब माँ उदास या गमगीन हो, तभी बालकों को मौज करना चाहिये न !

बालक तो आखिर नन्हें और निकम्मे ही हैं न ! उन्हें रंग की परख क्या ! कला की कद्र और पहचान क्या ! सौन्दर्य से उन्हें वास्ता क्या ! वे तो माँ-बाप की बड़ी-बड़ी गुड़िया हैं। माँ-बाप अपनी इच्छानुसार उन्हें सँवारेंगे और सजायेंगे। उन्हें देख कर खुश होंगे। खेलायेंगे और खिलायेंगे और यह सब भी तो कुछ बहुत अच्छे माने जाने वाले माता-पिता के चंद बालकों को ही न नसीब होगा !

## शिष्टाचार की गुलामी

बालक चाहते हैं कि वे नंगे बदन खेलें। लेकिन फिर शिष्टाचार का क्या होगा ! पहले माँ-बाप खुद शिष्टाचार की गुलामी से मुक्त होंगे, तभी न वे उससे बालकों को मुक्त रख सकेंगे !

पसीना चाहे चू रहा हो, कपड़े तो पहनने ही होंगे। बदन चाहे चारों ओर से जकड़ जाये, खुल कर खेलना-कूदना चाहे कठिन हो जाय, पर कपड़े तो पहनने ही होंगे। बिना कपड़ों के बालक कितना भद्दा लगता है ! उसके

सहज सुन्दर शरीर को जब तक हम बनावटी कपड़ों से ढँक नहीं देते, हमें कल नहीं पड़ती। हमारी कला-रसिकता का दिवाला नहीं पिटता। लेकिन बालक आखिर है तो सामाजिक प्राणी। उसे समाज के सब नियम तो जरूर ही लेने चाहिये न ? वह बचपन से कपड़े पहनना न सीखे, और फिर बड़ा होकर नंगा भटके तो ?

बालक कुदरत का खिलौना है। खुली हवा और सुबह के सूरज की धूप उसके प्यारे दोस्त हैं। पृथ्वी की गोद, माँ की प्यारी गोद से भी उसे अधिक प्रिय है। पृथ्वी तो उसकी माँ की माँ है न ?

लेकिन बालक को खुली हवा में जाने दिया जायगा तो उसे जुकाम न हो जायगा ! सूरज की धूप में फिरने से उसे बुखार न आ जायगा ! और जमीन पर लोटने से कपड़े गन्दे न होंगे ! बदन गन्दा न होगा ! अपनी इस मान्यता को हम कभी भूल सकते हैं ?

सोने से बिछौना खराब होता है, इसलिये बिछौने पर सोना नहीं, खेलने से कपड़े गन्दे होते हैं, इसलिये खेलना नहीं ! यह हमारा न्याय है।

हमारे लिये एक कायदा, बालकों के लिये बिल्कुल दूसरा कायदा। लेकिन कभी किसी ने बालक से पूछा भी है—"लल्ला ! तुम खेलना चाहते हो या कपड़े सम्भालना ?"

कैसा मुँहतोड़ जवाब मिलेगा, किसी ने सोचा है ?

कुदरत की सोहबत से बालक में नई जिन्दगी पैदा होती है। किसी ने कभी ख्याल किया है कि पृथ्वी के स्पर्श से बालक को कितनी खुशी, कितना आनन्द होता है ?

जब बालक आपके आगे-आगे दौड़ेगा और आप उसके पीछे-पीछे चलेंगे, तभी आप समझेंगे कि खुल कर खेलना बालक को कितना पसन्द है।

कोई जानता है कि बालक के विचार में सारी सृष्टि, सारा जीवन कितना चमत्कारिक, कितना अद्‌भुत और कितना अजीब है !

## बालक सब चीजों में चमत्कार देखता है

पृथ्वी की निर्मल धूल बालक को हमारे चन्दन से भी ज्यादा प्यारी है। हवा की हल्की, मीठी तरंगें उसे हमारे विकारी चुम्बनों से कहीं प्रिय हैं। बाल-सूर्य की कोमल किरणें उसे हमारे खुरदरे होठों से कहीं मुलायम होती हैं। जहाँ हमें कुछ भी नहीं दिखाई देता, वहीं बालक चमत्कार देखता है। नन्हीं-सी तितली को देख कर बालक पागल-पागल हो उठता है। पतिंगों को देख कर वह खुद पतिंगा-सा बन जाता है। मेंढकों को देख कर वह मेंढक की तरह कूदने लगता है। घोड़ों को देख कर वह हिनहिनाता और गाय को देख कर गाय की तरह रँभाने या डकारने लगता है।

घास का नन्हा-सा तिनका भी बालक की दृष्टि में एक महान् संग्रह-योग्य पदार्थ है।

अगर आप उसकी जेब टटोलेंगे, तो उसमें आपको घास के तिनकों और फूलों और पत्तियों के ढेर मिलेंगे।

प्रकृति में स्नान किये बिना बालक प्रकृति के रहस्यों को क्योंकर बूझ सकेगा!

चाँद की चाँदनी, नन्हीं-सी कलकल बहती नदी, खेतों की धूल, बाड़ी के बीच बनी झोंपड़ी, पहाड़ियों के कङ्कर, खुले मैदान और आसमान की रंग-बिरंगी शोभा, ये सभी बालक को प्रकृति की ओर से प्राप्त उपहार हैं।

## बालक का प्रकृति-प्रेम

इन सब का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग करने से हम बालक को क्यों रोकें ? यदि बालकों को खुले आसमान के नीचे, उन्मुक्त प्रकृति के बीच, रात-दिन रहने दिया जाय, तो वे कभी घर में आने का नाम भी न लें। फूल तो बालकों के जिगरी दोस्त हैं। उन्हें देख कर वे नाच उठते हैं।

दूर से फूलों की महक पाकर उनके नथुने फड़क उठते हैं, चेहरा दमक उठता है, दाँतों की कलियाँ खिल उठती हैं, और गालों पर दो नन्हें-नन्हें गड्ढे-से दिखाई देने लगते हैं।

बालक फूलों पर मुग्ध रहता है और फिर माता पर मुग्ध। बालक पहले प्रकृति के माधुर्य को समझता है, बाद में वह माता-पिता के माधुर्य को समझ पाता है।

जब बालक धूल में लोट कर ऊपर आसमान की ओर एकटक देखता है, तो कहिये वह क्या करता है?

वह समग्र प्रकृति को पीता नजर आता है। सारी सृष्टि को अपने स्नेह से भरता पाया जाता है।

चाँद उसे रोज-रोज नया-नया आनन्द दे जाता है।

चाँद रात ही में दिखाई पड़ता है। बालक सोचता है—यह चाँद दिन में कहाँ छिप जाता होगा? लुका-छिपी का खेल बालकों ने कहीं चाँद ही से तो न सीखा हो!

हम-आप 'घी चुपड़ी रोटी' का जो चाहे, अर्थ करें, पर यह काम असल में लोक-साहित्य के आचार्यों का है। हम चाहे बालक को चुपाने के लिये ही इस रोटी को याद करते हों, तो भी बालक तो यही सोचता होगा कि माँ उसे चाँद की रोटी नहीं, चाँद का तेज खिला रही है। चाँद की चाँदनी, उसकी शीतलता भला किसे अच्छी न लगेगी! बालक का आनन्द चाँद का रंग निरखने में, उसकी चाँदनी में नहाने में, और उसके तेज को अपनी आँखों में भरने में है।

बालक तुरन्त ही इस बात को मान लेता है कि चाँद में जो धब्बा है, वह निरा धब्बा नहीं, बल्कि कोई हरिण है, या कोई बुढ़िया बैठी चर्खा चला रही है। यह बालक के भोलेपन का नहीं, उसके पागलपन का सबूत है। प्रकृति को देख कर वह उसमें ऐसा ही तल्लीन हो जाता

है। विज्ञान की कर्कशता बालक के कोमल मस्तिष्क को नहीं सुहाती। यही वजह है कि बालकों को परियों की कहानियाँ * इतनी प्रिय होती हैं। अद्भुतता उनका स्वभाव है, और अद्भुतता में ही उनका आनन्द। लेकिन बालक के साथ चाँदनी में घूमने की फुरसत हमें हो, तब न! हमें चाँद पर कविता जो रचनी है। हरिण और बुढ़िया की लोक-कथा के रहस्य का पता जो लगाना होता है! हमें चन्द्रलोक में जीवित प्राणियों के रहने, न रहने की खोज जो करनी होती है!

हमें फुरसत मिले कैसे? मनुष्य सच्चा कवि बने कैसे? चित्रकला के चमत्कार का अनुभव उसे हो क्योंकर?

प्रकृति का गले तक पान किये बिना मनुष्य प्रकृति का चित्रण कैसे करे? उसका स्तुतिगान किस भाँति करे? उस पर काव्य किस भाँति लिखे? बिना खाये कभी किसी का पेट भरा है क्या?

---

* यह सही नहीं है कि विज्ञान से बालक घबराते हैं या जी चुराते हैं। बात दरअसल यह है कि परियों और जानवरों की काल्पनिक कहानियों के अलावा हम बालकों को वैज्ञानिक तथा अन्य वास्तविक कहानियाँ कभी सुनाते ही नहीं। अगर बालकों को हवाई जहाज, रेडियो, छापाखाना आदि की कहानियाँ रोचक ढंग से सुनाई जायँ तो वे बड़ी दिलचस्पी से इन्हें सुनेंगे। लेकिन हम तो यह मान बैठे हैं कि बालकों को परियों की कहानियों के सिवा दूसरी कहानियाँ पसन्द ही नहीं आतीं। जिस प्रकार बड़े अपने दिन भर के अरुचिकर काम से थकथका कर और परेशान होकर सिनेमा, नाटक आदि में जाकर अपनी थकावट और परेशानी को दूर करते हैं, उसी प्रकार तमाम दिन निठल्ले पड़े हुए बालक रात को परियों की कहानियाँ सुन कर अपना दिल बहलाते हैं। परियों की कहानियों से न तो बालकों का विकास होता है और न उनकी कल्पना-शक्ति ही बढ़ती है। इनसे तो उलटा बालकों का जीवन अवास्तविक बन जाता है। परियों और जानवरों की कहानियाँ सुनने के बाद प्रायः बालकों को यह कहते सुना है कि ये कहानियाँ तो झूठी हैं, इनमें खूब गप्प मारी गई हैं।

—सम्पादक

बालक को प्रकृति से दूर रख कर हम उसे क्या बनायेंगे ? देव या राक्षस !

मैं फिर पूछता हूँ, घर में बालक का कोई स्थान है क्या ?

## मकान में बालक को कोई स्थान नहीं

मकान बनवाते समय कोई सोचता है कि उसमें बालक के लिये कितने कमरे कहाँ-कहाँ रहेंगे।

किराये का घर लेते समय भी हम नहीं सोचते कि उसमें बालक के खेलने-कूदने लायक जगह है या नहीं। मकान मालिक से हम अन्य दसों प्रश्न पूछते हैं—घर में मोरी है या नहीं, रसोईघर में उजेला रहता है या नहीं, सोने के कमरों में हवा आती है या नहीं, नहाने के लिये नल, और पेशाब, पाखाने के लिये टट्टी है या नहीं, गादी-गदेलों को धूप में सुखाने के लिये ऊपर छत या चाँदनी है या नहीं आदि-आदि। लेकिन क्या कभी किसी ने अभी तक यह पूछने या जाँचने की तकलीफ उठाई है कि घर में बालकों के लिये खेलने-कूदने की भी जगह है या नहीं ? किराये का मकान लेते समय हमें भला अपने बालक क्यों याद आने लगे। बालकों के लिये अलग जगह कैसी ? यह ख्याल ही हमें तो अटपटा और नया मालूम होता है।

इन नन्हें-नन्हें बच्चों का अभी से स्वतन्त्र अधिकार, इनके लिये आज ही से इतनी खटपट ? सारा घर इन्हीं का जो है ? ये इसमें रहें, खायें, पीयें और मौज करें। घर में घूमने, सर्वत्र फिरने और खेलने से इन्हे कौन रोकता है ?

लेकिन वे कहाँ गायें ? कहाँ बैठ कर बात-चीत करें ? कहाँ खेलें ? कहाँ दौड़ें ? कहाँ घूमें ?

रसोईघर में जाते हैं तो माँ की परेशानी बढ़ती है। उसका सारा प्रबन्ध मिट्टी हो जाता है। अगर माँ देव-घर में बैठी पूजा-पाठ में लगी है, तो उसकी पूजा में विघ्न होता है।

दीवानखाने में पिताजी या तो अखबार पढ़ते मिलते हैं, या अपने किसी मवक्किल का केस तैयार करते होते, या किसी मरीज को देखते होते हैं, या गाँव अथवा शहर की किसी सभा में होने वाले अपने भाषण के मुद्दे लिख रहे होते हैं। वहाँ बच्चों को खुल कर खेलने का मौका कोई क्यों देने लगा! ओसारे में दद्दा और जीजी बैठे अपना सबक याद कर रहे हैं। बच्चे न तो उधर जा सकते हैं, न उनके आस-पास कहीं खेल-कूद सकते हैं, और न गा ही सकते हैं। जहाँ जाते हैं, वहीं से उन्हें निराश वापिस होना पड़ता है।

अगर तकदीर से कहीं कोई एकान्त कोना मिल भी गया, तो वहाँ बैठ कर बालक को काल्पनिक गुड्डों और गुड़ियों का खेल खेलकर खुश होना पड़ता है। झूठ-मूठ का बोलना पड़ता है।

कल्पनाशक्ति के विकास का यह एक निरा भ्रम है। शिक्षा शास्त्रियों का यह एक भ्रम है।

## बालक के लिए कोई फर्नीचर नहीं

घर में हम अपने और अपने मेहमानों के लिये मेज, कुर्सी, चटाई, जाजम वगैरा सब कुछ रखते हैं। लेकिन बालकों के लिये खासतौर पर टाट का एक बोरा भी हम कभी रखते हैं क्या?

बालक अपने दोस्तों और मुलाकातियों को कहाँ बैठावे? किस पर बैठावे?

क्या हम कभी यह जानने की भी कोशिश करते हैं कि नन्हें बालकों के भी अपने दोस्त होते हैं!

दोस्त तो हमारे आपके ही हो सकते हैं। नन्हें बच्चे भला दोस्ती को क्या समझें! लेकिन याद रहे कि हमारी आपकी दोस्ती मतलब की होती है, जब कि बालकों की दोस्ती निर्दोष और निःस्वार्थ। हमारे पास अपने

गहने-कपड़े रखने को आलमारियाँ, पेटियाँ और सन्दूकें होती हैं। बालक अपने कङ्कर-पत्थर, सीप और शङ्ख कहाँ रखें? क्या उनके बटोरे हुए पंखों, पींछों और गुड्डा-गुड़ियों वगैरा को रखने के लिए घर में कोई स्वतन्त्र जगह होती है?

हमारी किसी चीज की चोरी हो जाने पर बालक उधर कोई ध्यान नहीं देता। लेकिन अगर कोई उसके पींछों और शङ्खों-सीपों को चुरा ले, तो बालक तिलमिला उठता है। उसका तो मानो सारा राज ही लुट जाता है। तिस पर भी उसके इस बहुमूल्य संग्रह को सुरक्षित रखने के लिये हम उसे एक पेटी या सन्दूक तक नहीं देते। कैसी अजीब बात है!

## चीज बनाने में बालक के कद का ख्याल नहीं

सच तो यह है कि बालक है किस गिनती में! कितने ऐसे घर हैं, जहाँ बालक के कद का खयाल रख कर खूँटियाँ गाड़ी जाती हों! अलगनियों और आलमारियों का बन्दोबस्त किया जाता हो! घर में सजाये हुए अच्छे-अच्छे चित्रों का भी यही हाल है, वे इतने ऊँचे लगे होते हैं, जिन्हें बालक न कभी देख पाते हैं, न सराह पाते हैं।

बालक के कपड़े हम टाँग देते हैं। ऊपर से लोटा-गिलास हम उतार देते हैं। बड़े-बड़े वजनी तख्तपोश हम बिछा देते हैं। थाली-कटोरी भी हम सजा देते हैं।

बेचारा बालक करे क्या? बड़ी-बड़ी वजनदार चीजों को वह किस प्रकार पकड़े? कैसे उठावे? जी तो उसका बहुत चाहता है, पर वह करे क्या?

## बालक को बड़े गुलाम बनाते हैं

प्रायः हम समझते हैं कि बालक सशक्त नहीं है, अतएव ताकत के सभी काम हमें उसके लिये कर देने चाहिये। बाल-प्रेमी माता-पिता सोचते हैं कि ऐसा करके वे अपने बालकों को बहुत सुख पहुँचाते हैं।

बालक के महत्त्व को समझने का दावा करने वाले कहते हैं कि बालक के लिये जो कुछ भी वे करते हैं, सो सब बाल-पूजा और बाल-सम्मान की दृष्टि से ही करते हैं। लेकिन ये सब बालक को प्रति-पल अपंग बनाते रहते हैं, नहीं, उसे गुलाम-के-गुलाम बनाते हैं। क्योंकि हम जिसके गुलाम बनते हैं, वह हमारा भी तो गुलाम बनता है!

## बालक की शक्ति में अविश्वास

क्या हम बालक का विश्वास करते हैं? लालटैन या चिराग जलाने देते हैं? आग सुलगाने देते हैं? उसके अपने-अपने छोटे-छोटे रूमालों और कपड़ों को उसे अपने हाथों धोने देते हैं?

हम तो कह उठते हैं कि बालक से यह कुछ हो नहीं सकता। हम मानते हैं कि उसमें व्यवस्था-शक्ति होती ही नहीं। लेकिन हमें आँखें हों, तब न हम बालक की इन शक्तियों को देख सकें!

अज्ञान के घोर अन्धकार ने हमें चारों ओर से घेर लिया है। क्या बालक का विश्वास करके हम कभी उसे स्वतन्त्ररूप से काम करने का अवसर देते हैं? हम बालक के बदले खा नहीं सकते, उसके बदले चल नहीं सकते, उसके लिये खेल नहीं सकते।

लेकिन हम उसके बदले बर्तन माँज देते हैं, उसे कपड़े पहना देते हैं, उसके लिये तख्तपोश बिछा देते हैं।

अगर कोई हमें हमारे लायक काम करने से इन्कार कर दे तो? हमारा सारा काम कोई हमारे लिये कर दिया करे तो? हम सेठ रहेंगे या गुलाम।

क्या ऐसा स्वामित्व हम पसन्द करेंगे? वह स्वामित्व होगा या मृत्यु होगी?

## बालक सब कुछ कर सकता है

बालक सब कुछ कर सकता है। वह छोटे-छोटे बर्तन माँज सकता है, नन्हीं झाड़ू से घर बुहार सकता है, छोटी बहन को झुला भी सकता है। लेकिन हमें यह सब सूझता कहाँ है !

## स्वर्ग कहाँ है ?

यदि हम बालक को अपने जीवन में उचित स्थान दें, तो पृथ्वी पर स्वर्ग का राज्य स्थापित हो जाय। घर में देव क्रीड़ा करने आवें। देवों को मृत्युलोक में जन्म लेना पड़े।

स्वर्ग बालक के सुख में है। स्वर्ग बालक के स्वास्थ्य में है। स्वर्ग बालक की निर्दोष मस्ती और मुस्कान में है। स्वर्ग बालक के भोले-भाले गान-तान है।

---

# बालक का वातावरण

## वातावरण व वंशानुक्रम

बालक के भविष्य का निर्माण करने वाली दो विशेष शक्तियाँ हैं। शिक्षा-शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने उन्हें अनेक नाम दिये हैं—प्रकृति और लालन-पालन, स्वभाव और वातावरण, वंशानुक्रम और वाह्य परिस्थिति आदि। स्वभाव (प्रकृति) अथवा इनके अन्य पर्यायवाची शब्दों का तात्पर्य उन प्रवृत्तियों और विशेषताओं से है, जो कि बच्चे में उसके जन्मकाल से ही पाई जाती हैं। यह विशेषताएँ किस प्रकार माता-पिता से बालक में आ जाती हैं, यह प्राणी-विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। वर्तमान शताब्दी में इसका बहुत ही गहरा और विशद् अध्ययन हुआ है। वातावरण से तात्पर्य उस समस्त जड़ और चेतन वातावरण से है, जिसमें बच्चे का पालन-पोषण होता है। अभी तक वंश-गत नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन करना सम्भव नहीं हो सका है। परन्तु जहाँ तक वातावरण का सम्बन्ध है, यह पूर्णतया मनुष्य के अधीन है। इस सम्बन्ध में वह पूर्णतया स्वतन्त्र है। कोई उसके रास्ते में बाधा नहीं डाल सकता। उसे तो केवल अपने में और भावी मनुष्य में सामञ्जस्य स्थापित करना है।

## वातावरण का विशेष महत्त्व

यह दोनों शक्तियाँ बच्चे के जीवन को परस्पर किस अनुपात से प्रभावित करती हैं, इसका निश्चय अभी तक नहीं हो पाया है। इस विषय में विद्वानों में दो मत प्रचलित हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक, सब वंश-परम्परागत संस्कारों के विषय में काफ़ी अनुसन्धान के बाद इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मनुष्य वास्तव में प्रकृति के हाथ का एक खिलौना है, और उन प्रवृत्तियों

तथा कभी-कभी वह अपने न्यायपूर्ण कार्य में इस हस्तक्षेप के विरुद्ध विद्रोह तक कर बैठता है। परन्तु बहुधा उसे अपनी कठोर माताशाही का शासन स्वीकार करना पड़ता है। क्या उस माता को मालूम है कि उसने अपने बालक को कितनी बड़ी हानि पहुँचाई है ? उसने बालक की स्वतन्त्रता में बाधा डाल कर उसकी उन्नति के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट पैदा की है। वास्तव में उसने अनजान में ही अपने सपनों की दुनिया के राजा का सबसे अधिक अपकार किया है। बड़ा आदमी बच्चे के वातावरण का ही एक अंग है, तथा यह उसका पवित्र कर्तव्य है कि वह किसी प्रकार बच्चे की उन्नति में बाधक न हो। शिक्षक हो या माता केवल बालमनोविज्ञान और बाल-स्वभाव का अध्ययन ही उसके लिये पर्याप्त नहीं है। उसे तो उस वातावरण के साथ अपना मेल बिठाना है, जिसे वह बच्चे के लिये आवश्यक समझता है। वास्तव में उसे बच्चे के साथ स्वयं भी बच्चा बनना पड़ेगा। जो बड़े आदमी बालक के पास रहते हैं, उन्हें तृष्णा, घमण्ड, क्रोध, आलस्य एवं सबसे अधिक अहंकार को पूर्णतया त्याग देना चाहिये, जिससे वे बालक के लिये आदर्श वातावरण उपस्थित कर सकें। बड़े आदमी का पार्ट वस्तुतः एक दर्शक का सा होना चाहिये। बालकों के अन्दर हठ एवं उपद्रव की आदतें तभी आती हैं, जब बड़ा व्यक्ति अपने इस पार्ट को भूल जाता है, तथा अपने आपको डिक्टेटर समझने लगता है।

## पदार्थगत वातावरण

बालक की उन्नति में पदार्थगत वातावरण का उतना ही महत्त्व है, जितना व्यक्तियों का। पदार्थगत वातावरण से तात्पर्य उन सभी वस्तुओं से है, जिनके बीच में बालक रहता है, तथा जिन्हें वह अपने खेल के लिये व्यवहार में लाता है। बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिये मकान काफी खुला, हवादार और साफ-सुथरा होना चाहिये तथा उसमें बालक के खेलने के लिये पर्याप्त जगह भी होनी चाहिये। पदार्थगत वातावरण में बालक का

भोजन भी आ जाता है। बालक की शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिये उसके भोजन का सन्तुलित होना आवश्यक है। उसे अपनी आवश्यकता से न तो अधिक और न कम मिलना चाहिये। बालक के कपड़े* भी उसकी द्विमुखी उन्नति पर बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं।

पदार्थगत वातावरण का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग वे वस्तुएँ अथवा साधन हैं, जो शिक्षा-शास्त्रियों अथवा माता-पिता ने अपने बालकों के उपयोग के लिये बनाये हैं। इनमें खिलौने, मिकानो, पहेलियाँ, किंडरगार्टन की वस्तुएँ, मांटीसोरी के साधन, चित्रकला की पुस्तकें, मिट्टी की मूर्तियाँ तथा विशेषतया बालकों के लिये लिखी गई पुस्तकें व पत्रिकाएँ इत्यादि सम्मिलित हैं। अवस्था, देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार ये साधन भी भिन्न-भिन्न होने चाहिये। प्रत्येक घर में छोटे बालकों के लिये अलहदा स्थान होना चाहिये, और जो पढ़ सकते हों, उनके लिये पुस्तकालय भी अवश्य होना चाहिये, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो। प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वह अपने बालकों को खेल-कूद में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करें। यह कोई असम्भव आदर्श नहीं है, और न यह निरा स्वप्न ही है। यह तो एक अत्यन्त ही व्यावहारिक योजना है। यदि राज्य अपने बालकों का अधिक ध्यान रखने लगे तथा माता-पिता और शिक्षक बालक की उन्नति के लिये अधिकाधिक प्रयत्न करने लगें तो कोई कारण नहीं है कि हम शीघ्र ही अपने उद्देश्य में सफल न हों।

---

* बालक रंगीन कपड़े अधिक पसन्द करते हैं। माता-पिता को चाहिये कि अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार कपड़े न बनवा कर बालकों की इच्छा और पसन्द के अनुसार ऐसे कपड़े बनवाएँ, जिन्हें बालक आसानी से पहन और उतार सकें। भोजन की तरह कपड़े भी बालक को आवश्यकता से अधिक नहीं देने चाहिये। सर्दी आदि के भय से हम बालक के शरीर पर इतने कपड़े लाद देते हैं कि वह बेचारा न तो आजादी से चल-फिर सकता है, न खेल-कूद सकता है, और न कोई प्रवृत्ति ही ठीक ढंग से कर सकता है। इस प्रकार अधिक कपड़े बालक के विकास में बाधक बन जाते हैं।

—सम्पादक

# स्वातन्त्र्य और स्वयं स्फूर्ति

'मान्टीसोरी' शब्द का उच्चारण करते ही यदि कोई विचार हमारे मन में जाग्रत होता है, तो वह 'स्वातन्त्र्य' और 'स्वयं स्फूर्ति' का विचार है।

मैडम मेरिया मान्टीसोरी स्वयं ब्रह्मचारिणी हैं, और इस कारण स्वभावतः वह स्वयं किसी एक भी बालक की माँ नहीं हैं, फिर भी बालकों के लिये उनके मन में अधिक-से-अधिक कोमल भावों ने जन्म लिया और बाल-प्रेम की अधिक-से-अधिक सच्ची कल्पना भी उन्हीं ने संसार के सम्मुख उपस्थित की। बालक के सम्मान का, उसे एक स्वतन्त्र व्यक्ति समझ कर उसका आदर करने का पैगाम उन्हीं ने दुनिया भर में फैलाया है। 'बालक की स्वतन्त्रता'—जैसे विचित्र प्रतीत होने वाले शब्द का प्रयोग भी सब से पहले उन्होंने ही किया और अपनी शाला में उसका क्रियात्मक व्यवहार भी किया।

## बाल-स्वतंत्र्य का महत्त्व

अब तक लोग यही समझते थे कि बालक छोटा है, उसकी समझ कच्ची है, वह कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। उसने तो सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के जो सब नियम बड़ी उम्र वालों के लिये हैं, वे बालक के लिये भी उतने ही सच हैं। बालक आज्ञापालक हो सकता है, ऊपरी दबाव या बाहरी डर से नहीं, बल्कि अन्तःकरण की स्वतन्त्र स्फूर्ति से, अपने पर प्राप्त काबू से, अपनी स्वेच्छा से। यह बहुत ही आवश्यक है कि बालक अनियन्त्रित, अव्यवस्थित और उच्छृंखल स्थिति से अपने ही प्रयत्नों द्वारा नियन्त्रित, व्यवस्थित और स्वाधीन बने। जो व्यवस्था और नियम जबर्दस्ती पलवाये जाते हैं, वे बालक को कभी सच्चे अर्थ में व्यवस्थित और नियन्त्रित नहीं बना सकते। यही कारण है कि बाहरी दबाव

के हटते ही बालक अव्यवस्थित और उच्छृंखल बन जाता है। डा० मान्टीसोरी ने ये सब बातें केवल कह कर ही नहीं, करके भी बता दी हैं।

यहाँ इस सब की विस्तार से चर्चा करना आवश्यक नहीं है। हमें तो केवल इतनी बात ध्यान में रखनी है कि घर में बालकों से काम लेते समय पग-पग पर उनकी स्वतन्त्रता का प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होगा। हम यह न भूलें कि बालक की प्रत्येक सत्प्रवृत्ति उसके विकास की पोषक होती है। इसलिये हमें उसमें बाधा नहीं डालनी चाहिये, उसे वह काम स्वतन्त्रतापूर्वक करने देना चाहिये। यदि बालक की किसी प्रवृत्ति से दूसरे के काम में बाधा पहुँचती हो, तो हम बालक के लिये दूसरे स्थान या समय की व्यवस्था कर दें, पर उसकी प्रवृत्ति को कभी न रोकें।

## हाँ और नहीं

हमारे लिये दूसरी विचारणीय बात हमारे 'हाँ' और 'नहीं' की है। हमारे 'हाँ' और हमारे 'नहीं' में बालक की स्वतन्त्रता और परतन्त्रता समाई हुई है। अपनी एक 'नहीं' से हम उसे गुलाम बना सकते हैं, और हमारी एक ही 'हाँ' उसे उड़ने के लिये पंख दे सकती है। इसके लिये हमें एक साधारण नियम सदा ध्यान में रखना चाहिये, और वह यह कि जब तक हम 'हाँ' कह सकते हैं, तब तक 'नहीं' कदापि न करें। एक बहन मुझसे कहती थीं कि आम तौर पर लोगों की यह आदत-सी होती है कि पहले-पहल वह 'नहीं' ही कहते हैं। लेकिन जब देखते हैं कि बालक अपना हठ नहीं छोड़ रहा है, तो 'हाँ' कह देते हैं। बालक के यह पूछने पर कि 'मैं घूमने जाऊँ?' जो लोग पहले 'ना' कहते हैं और फिर उसके बहुत रोने और गिड़गिड़ाने पर उसे जाने देते हैं, वे निर्बल और अत्याचारी हैं, स्वतन्त्रता के उपासक सच्चे शासक नहीं। जब हम एक बार यथा-संभव 'हाँ' कहने का नियम बना लेते हैं, तो 'नहीं' कहने का विवेक हमें बिना

कठिनाई के प्राप्त हो जाता है, और बालक की स्वतन्त्रता की सीमा भी निश्चित हो जाती है।

## स्वतंत्रता का सही मतलब

बालक को उसके व्यक्तिगत विकास के लिये, उसे स्वाधीन बनाने के लिये, आवश्यक स्वतन्त्रता देनी ही चाहिये, लेकिन यदि वह दूसरों के लिये बाधक बन रहा हो, ( जैसे किसी को मार रहा हो, या किसी की कोई चीज छीन रहा हो ), तो उसे तुरन्त रोकना चाहिये। इसके लिये वह स्वतन्त्र है ही नहीं। स्वतन्त्रता का अर्थ है—निज का तन्त्र रखने वाला, निज के अधीन रह कर अपना तन्त्र चलाने वाला, निज के साथ दूसरों का भी सम्मान करने वाला।

फिर बालक की स्वतन्त्रता से मतलब है, उसके घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता, क्रिया करके अपने स्नायुओं पर काबू पाने की स्वतन्त्रता, फिर उसी क्रिया को करके उसका अभ्यास बढ़ाने की स्वतन्त्रता। यदि हमारा घर छोटा हुआ, तो बालक को उसमें घूमने-फिरने की पूरी स्वतन्त्रता नहीं रहती। लेकिन बालक के लिये तो घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता विशेष रूप से आवश्यक है, इसलिये कुछ समय के लिये उसे खुली जगह में ले जाना हमारा कर्त्तव्य है।

जब बालक चलता हो, चढ़ता हो, चीजें उठाता हो, उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता हो, तो ये सब क्रियायें उसे अपने आप और अपनी गति से करने को पूरी-पूरी स्वतन्त्रता हमें देनी चाहिये। हमें उसमें जरा भी बाधा न डालनी चाहिये। क्षण-भर के लिये भी उसके मार्ग में न आना चाहिये। बीच-बीच में उसे उसकी भूलें बताने या मार्ग-सूचन करने से बालक के कार्य में बाधा पड़ती है और क्रिया पर उसे काबू प्राप्त नहीं होता। जब बालक किसी एक क्रिया को करता है, तो बहुधा हम उसे वैसा

करने से रोक देते हैं। हमें ऐसा न करना चाहिये। ऐसा करके हम उसके कार्य और विकास में बाधक ही बनते हैं।

## बालक के हेतु को समझिए

आम तौर पर हमारी यह कहने की आदत होती है, कि यह क्या करता है? ऐसा क्यों करता है? या यह कर और वह कर आदि। हमें अपनी इस आदत को तत्काल सुधार लेना चाहिये और जब बालक कोई काम करता हो, तो हमें यह देखना चाहिये कि वह किस हेतु से कर रहा है, वह क्या सिद्ध करना चाहता है, उसके द्वारा वह कोई स्नायु-गत क्रिया सीखने का प्रयत्न तो नहीं कर रहा है आदि-आदि। अपनी उतावली के कारण अथवा अपने अवलोकन के अभाव में हम बालकों की बहुतेरी प्रवृत्तियों को क्रूरतापूर्वक एक झटके में दबा देते हैं। हमें चाहिये कि हम इस सम्बन्ध में खूब सतर्क रहें।

## बालक को स्वतन्त्ररूप से काम करने दीजिए

सारांश यह है कि स्वातन्त्र्य मनुष्य-जीवन का प्राण और बाल-विकास की आत्मा है। हम इस बात का प्रयत्न करें कि बालक स्वयं ही स्वतन्त्र बने, हम उसे उसका काम स्वयं कर लेने दें, उसे अपना उपयोग स्वयं करने दें, उसे ऐसे रास्ते पर लगा दें कि वह जीवन का स्वयं अनुभव कर सके और हम उसके आस-पास बाड़ के रूप में खड़े-खड़े उसके स्वतन्त्र-विकास की रक्षा किया करें। जब माता-पिता अपनी अनेक मनाहियों, निषेधों को वापस ले लेंगे, अपने विचारों को बालकों पर लादना छोड़ देंगे, और बालकों से अपने आदर्श को मनवाने का विचार त्याग देंगे, तभी बालक स्वतन्त्रता की हवा में जी सकेंगे। तभी वे शरीर और आत्मा से स्वाधीन बनेंगे और अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व बना सकेंगे।

## बालक के साथ जबरदस्ती मत कीजिये

दूसरे, बालक की प्रवृत्ति अथवा कार्य का उसके विकास की दृष्टि से तभी कुछ मूल्य हो सकता है, जब बालक उस प्रवृत्ति को अपनी आन्तरिक प्रवृत्ति से अर्थात् स्वेच्छा से करता है। जो काम हम बालक से जबरदस्ती कराते हैं, वह काम होता तो है, परन्तु बालक उससे कुछ सीख नहीं सकता, और सच पूछा जाय तो वह उसमें कुछ करता भी नहीं। इसके विपरीत जब बालक अन्दर की भूख से किसी भी काम को लेता और करता है, तो उस काम में वह तन्मय हो जाता है, उस पर अपनी सारी शक्ति लगा देता है, उसके करने में वह एकाग्र, शान्त और व्यवस्थित बनता है, और अन्त में उस काम में प्रवीणता भी प्राप्त कर लेता है। काम समाप्त होने पर वह प्रसन्न होता है, काम से वह न तो थकता है, न ऊबता है, बल्कि हमारे काम को दुगुने जोश से शुरू करने का उत्साह और स्फूर्ति उसमें पाई जाती है। लेकिन जब हम जबरदस्ती बालक से कोई काम कराते हैं, तब एक तो उसका चित्त उसमें नहीं लगता, रह-रह कर उसका ध्यान दूसरी ओर चला जाता है, और काम खतम होते ही वह छुटकारे की एक लम्बी साँस लेता है, वह थका-सा प्रतीत होता है, और अपना मनचाहा कोई दूसरा काम करने की स्फूर्ति उसमें नहीं रह जाती।

## जबरदस्ती काम करवाने का परिणाम

अतएव यह स्पष्ट है कि बालक के लिये उसकी वही प्रवृत्ति हर तरह लाभदायक है, जिसमें वह स्वेच्छा से, या स्वयं-स्फूर्ति से प्रवृत्त होता है। उसी में वह उत्तम रूप से एकाग्र बन सकता है; उसके द्वारा वह हिलने-चलने आदि की व्यवस्थितता सीखता है; उसी से वह आत्मसंयम की ओर बढ़ता है। इसके विपरीत उस पर जबरदस्ती कोई काम लाद देने से, उसे बहुत ही नुकसान पहुँचता है। आज तक हमने भिन्न-भिन्न विषयों को

महत्त्वपूर्ण माना और उन्हें किसी नियत समय में सिखाने की कोशिशें कीं, उससे हमें यही अनुभव हुआ कि बालक स्वभावतः चञ्चल हैं, वे एकाग्र नहीं रह सकते, बीस मिनट से अधिक किसी विषय पर वे अपने मन को नहीं लगा सकते, और लगातार आधा घण्टा काम करने के बाद वे थक जाते हैं। हमारा यह अवलोकन और अनुभव सच था, लेकिन कारण कुछ और ही थे। पुराने लोगों ने यह मान रक्खा था कि बालक का मन स्वभाव से ही इतना चञ्चल है, जब कि असलियत यह थी कि हम अपनी पसन्द के काम या विषय को अपने द्वारा ठहराए हुए समय पर और अपनी निर्धारित की हुई रीति से करवाते या सिखाते थे, बालक सहज ही इससे थक जाता था, और काम में उसका मन नहीं लगता था। जो लोग बालकों के साथ घर में रहते हैं वे भली भाँति जानते हैं कि बालक कभी-कभी एकाध छोटी-मोटी प्रवृत्ति में एक-एक घण्टा तक बिता देते हैं और कभी-कभी तो घण्टों उसी में लीन रहते हैं। इसलिये हमें चाहिये कि हम बालकों के लिये ऐसी अनुकूलता पैदा कर दें कि जिससे वे स्वयं-स्फूर्ति से अपने काम कर सकें। हम अपनी पसन्द के काम उनसे जबरदस्ती न करावें।

## बालक को अपना काम स्वयं चुनने दीजिए

स्वेच्छा-प्रवृत्ति के लिये, बालक को अपनी पसन्द का समय और कार्य चुनने के लिये, स्वतन्त्रता होनी चाहिये। आम तौर पर बालक अपनी विविध इन्द्रियों द्वारा कुछ-न-कुछ करना चाहते हैं। हम उनके लिये ऐसे कामों की अनुकूलता कर दें और फिर इस बात का निर्णय बालक पर छोड़ दें कि किस काम को वह कब करे। बालक अपनी इन्द्रिय की भूख और अपनी रुचि के अनुसार काम का चुनाव करता है। यदि हमने चर्खा, तकली, मिट्टी के खिलौने और चित्रकला आदि की सामग्री प्रस्तुत की है, तो बालक अपनी जन्मजात रुचि के अनुसार इनमें से किसी एक प्रवृत्ति को लेकर बैठ जायेंगे। जिसमें चित्रकार के गुण बीज रूप में मौजूद होंगे,

वह चित्रकला की सामग्री लेकर बैठेगा। फिर वह कितनी ही देर तक क्यों न बैठे! उस समय यदि हम जाकर कहें कि 'देखो, अब मिट्टी के खिलौने बनाने का वक्त है, खिलौने बनाओ!' और हम उसे इसके लिये मजबूर करें तो चित्रकला में जो प्रवीणता या मौलिकता वह प्राप्त करता, कभी न कर सकेगा, उल्टे अपनी रुचि के विरुद्ध खिलौने बना कर वह उस शक्ति से भी हाथ धो बैठेगा, जो आगे चल कर उसमें आ सकती थी। कारण, यह है कि जब हम अपनी एक प्रबल इच्छा को रोक कर दूसरा काम हाथ में लेते हैं, तो हमारे दिल में उस काम के लिये भी अरुचि पैदा हो जाती है और यह स्वाभाविक भी है।

## बालक को रुचि के अनुसार काम दीजिए

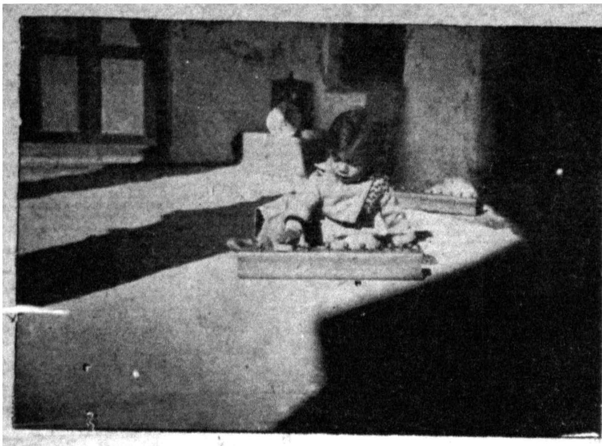
इसलिये घरों में भी बालकों को काम बताते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि बालक जिस समय जैसे काम की रुचि बतलावे उसे उस समय वही काम दिया जाय। उसके लिये सिलाई का काम उपयोगी है, यह सोच कर उसे जबर्दस्ती बैठाना उचित नहीं। बालक को शौक तो बागबानी का हो, और काम हम उसे सिलाई का दें, तो यह कैसे हो सकता है? हम अपने खाने-पीने आदि का समय नियत कर लें और शेष समय में बालक को अपनी मनचाही प्रवृत्तियाँ करने की स्वतन्त्रता दे दें, फिर उस वक्त में वह चाहे तो पढ़े, लिखे, सूत काते या बागबानी का काम करे, हम उसमें किसी प्रकार की बाधा न डालें। हम सिर्फ यही देख लें कि बालक अपने काम में एकाग्र है या नहीं, कुछ करने की धुन में है या नहीं, किसी उद्योग में लगा है अथवा नहीं।

## स्वेच्छा से किये गए काम का महत्त्व

अपने प्रयत्न से, अपनी बुद्धि से एक कदम आगे बढ़ने का मूल्य हमारे मार्ग-प्रदर्शन और हमारी सहायता से दस कदम बढ़ने की अपेक्षा कहीं अधिक है। यह सच है कि यदि हम उसे मिट्टी के खिलौने आदि

बनाना सिखायेंगे, इस कार्य में उसकी मदद करेंगे तो वह सुन्दर और सुडौल खिलौने बनावेगा। लेकिन उसके अपने प्रयत्न से जो भी बुरा-भला बैंगन या अमरूद या आम वह बनायेगा, उसकी कीमत उस सुन्दर सुडौल खिलौने से सौ-गुना ज्यादा होगी। इसलिये हमें तो सदा इसी का ध्यान रखना चाहिये कि बालक ने कौनसा चित्र बनाया है, उसने क्या लिखा है और उसने कैसे रंग पूरे हैं। दिशासूचक के रूप में हम उसे तरह-तरह के काम बता सकते हैं; यदि कोई काम हमें आता हो तो उसके सामने उसे करके बता सकते हैं, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से उसे अपना अनुकरण करने को कहना उचित नहीं। वह अपनी इच्छा से किसी का अनुकरण करना चाहे, तो भले ही करे।

---



बालक गद्दा पेटी के साथ काम कर रहा है



बालक स्नान कर रहे हैं

# बाल-प्रवृत्तियाँ

## बालक का प्राण—काम

प्रवृत्ति बालक का प्राण है। प्रवृत्ति बिना बालक जी नहीं सकता। भोजन के बिना तो बालक कुछ देर रह सकता है, लेकिन काम के बिना वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। प्रत्येक वनस्पति और प्राणी में एक कुदरती ताकत होती है जिसे मानस-शास्त्री 'होर्मे' कहते हैं। यह प्रेरक शक्ति बालक को विकास की ओर ले जाती है और उसमें हर प्रकार के काम करने की प्रबल इच्छा पैदा करती है। काम करने की यह इच्छा इतनी तीव्र होती है कि दुनियाँ की कोई शक्ति इसे दबा नहीं सकती। रोकने और दबाने पर भी यह इच्छा बार-बार उठती है और बालक को काम करने के लिये मजबूर करती है। कोई काम न देकर बालक की इच्छा को दबाना उसके साथ घोर अन्याय और दुश्मनी करना है। बालक को नन्हा और निर्बल समझ कर माता-पिता उसके लिये काम की कोई आयोजना नहीं करते, उसे कोई काम देना बेकार समझते हैं। बालक की महान शक्तियों का उन्हें ज्ञान कहाँ! अगर वे यह समझ लें कि बालक बिना-थके, बिना घबराये उनसे भी अधिक काम करने की शक्ति और साहस रखता है, तो उनका दृष्टिकोण अपने आप ही बदल जाये।

## काम के अभाव में तोड़-फोड़

बालक कभी बेकार नहीं रह सकता। काम के लिये वह तड़पता रहता है। बड़े पैसे, नाम और परिणाम के लिये काम करते हैं। मगर बालक काम के लिये काम करता है। वह सच्चा कर्म-योगी है। वह गीता के निष्काम कर्म करने की फिलासफी पर अमल करता है। ऐसी

हालत में यदि आप उसके लिये काम की व्यवस्था न करेंगे तो वह स्वयं ही अपने लिये काम की कोई योजना बना लेगा। वह आपकी दवात गिरा देगा, आपका शीशा तोड़ देगा, माँ की कङ्घी चबा डालेगा, सिंदूर बिखेर देगा, आपकी किताब फाड़ देगा। आप उसे पीटेंगे और वह फिर वैसा ही करेगा। वह आपसे काम माँगता है। काम आप उसे देते नहीं। काम के अभाव में वह तोड़-फोड़ करता है। तब आप चपत से काम लेते हैं। यह कहाँ का इन्साफ है? इससे न आपको ही लाभ होता है और न बालक को ही। आप भी परेशान होते हैं और बालक भी। लेकिन आपकी परेशानी, आपकी हानि, बालक की परेशानी और हानि के मुकाबले में कुछ भी नहीं है; जो काम न मिलने के कारण उसे सहन करनी पड़ती है। वह बेचारा सदा के लिये निकम्मा बन जाता है, नालायक बन जाता है, पंगु बन जाता है, शैतान और गुण्डा बन जाता है।

बालक एक मिनट के लिये भी खामोश नहीं बैठ सकता। उसके हाथ-पाँव, आँख, नाक-कान आदि कुछ-न-कुछ सूँघने, सुनने, देखने, छूने, चखने आदि के लिये बेकरार रहते हैं। बालक अपने आस-पास की दुनियाँ को जानना चाहता है। इसलिये कभी भागता है, कभी कूदता है, कभी उछलता है, कभी जीने पर चढ़ता-उतरता है तथा कभी कुछ उठाता है और कभी कुछ। गरज यह कि आप चाहे जो कर लें वह पत्थर बन कर बैठ नहीं सकता। ऐसा करना उसके लिये अस्वाभाविक और अप्राकृतिक है।

## प्रवृत्ति बालक का प्राण है

काम करना बालक को इतना प्रिय है कि बीमार होने पर भी कुछ-न-कुछ करने के लिये वह बुरी तरह छटपटाता रहता है। बीमारी के जरा कम होते ही वह चारपाई को छोड़ कर इधर-उधर मटरगश्ती करने लगता है। आप चिल्लाते हैं, नाराज होते हैं, पीछे-पीछे भागते हैं, लेकिन

वह आपकी एक नहीं सुनता। प्रवृत्ति बालक के शारीरिक और मानसिक विकास का साधन है। इसलिये बार-बार धमकाये जाने और पिटने पर भी वह प्रवृत्ति करने से बाज नहीं आता। जब आप अधिक तंग करते हैं तो छुक-छिप कर वह अपना काम करता है। हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहना उसके लिये कठिन ही नहीं असम्भव है। बालक अपने सब काम अपने आप करना ही पसन्द करता है। अपना काम अपने आप करके बालक को जितनी खुशी होती है उतनी खुशी किसी विश्वविजयी को भी नहीं हो सकती। बालक की उस खुशी का हम अन्दाजा ही नहीं लगा सकते। एक साल की नीता अपने ही प्रयत्न से जब एक चारपाई से दूसरी चारपाई पर सफलतापूर्वक चली गई तो मारे खुशी के वह नाचने लगी। अपनी इस अभूतपूर्व विजय पर उसे बड़ा गर्व था। कितनी ही देर तक वह उछल-कूद करती रही, हँसती रही, इतने से ही उसे सन्तोष नहीं हुआ। अपनी सोती हुई बड़ी बहन रेखा को उसने हिला-डुला कर जगाया और चारपाई की ओर संकेत करके अपनी विजय की उसे सूचना दी। उस वक्त की उसकी गजब की हँसी देखते ही बनती थी। शब्दों में उसे व्यक्त करना मेरे लिये सम्भव नहीं है।

## प्रवृत्ति में एकाग्रता

अपनी मनपसन्द प्रवृत्ति में बालक घण्टों तल्लीन रहता है। प्रवृत्ति करते-करते वह इतना एकाग्र हो जाता है कि खाना-पीना तक भूल जाता है। बालक की इस एकाग्रता में जब कोई खलल डालता है तो वह विह्वल हो उठता है, फूट-फूट कर रोने लगता है, जैसे आपत्ति का पहाड़ ही उस पर टूट पड़ा हो। प्रवृत्ति बालक का सर्वस्व है। इसके द्वारा वह अपने को स्वतन्त्र बनाता है, विजय पर विजय प्राप्त करता है। प्रवृत्ति के अभाव में में बालक पराधीन व परावलम्बी बन जाता है। अब वह अपना सारा

समय झूठ बोलने, चोरी करने, लड़ने-झगड़ने, सिगरेट पीने, तोड़-फोड़ करने, आवारा घूमने, मारने-पीटने, पिटने-पिटाने तथा अपनी मनमानी करने में ही व्यतीत करता है। यही उसका रात-दिन का प्रोग्राम बन जाता है। वह माता-पिता के लिये अभिशाप और माता-पिता उसके लिये अभिशाप बन जाते हैं। इतना महत्त्व है बालक के लिये प्रवृत्ति का! माता-पिता इस रहस्य को समझ लें तो बात-की-बात में घरों का कायाकल्प हो जाय। हमारी सारी उलझनें सुलझ जायँ, पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आये और परलोक के स्वर्ग की चाह ही न रहे।

घर बालक की दुनियाँ है। कामों की उसके लिये कोई कमी नहीं है। उसके करने के लिये घर में अनेक काम पड़े हैं। हमने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया है। बालक जब अपने आप अपना मन-पसन्द काम चुन लेता है तो उसका हम विरोध ही करते हैं। हमने उसकी कितनी ही सृजनात्मक शक्तियों को बरबाद कर दिया है। डरा-धमका कर और मार-पीट कर उसकी कितनी ही सुन्दर प्रवृत्तियों को हमने दबा दिया है।

## बालक के प्रत्येक काम के पीछे हेतु

बालक का प्रत्येक काम एक सुन्दर क्रिया है, जिसकी तह में कोई न कोई निश्चित हेतु छिपा रहता है। उस हेतु को पूरा करने के लिये बालक के मन में कल्पना है। अपनी अल्प किन्तु बलवान क्रिया-शक्ति द्वारा उसे सिद्ध करने की वह कोशिश करता है। यह प्रवृत्ति ही बालक की सच्ची प्रवृत्ति है। बालक की ऐसी प्रवृत्तियों को ध्यानपूर्वक देख कर आप उसके लिये अनेक काम चुन सकते हैं।

## किसी भी घर में काम की कोई कमी नहीं

अमीर-गरीब सभी माता-पिता अपने बालकों को काम दे सकते हैं। इसके लिये बहुत खर्च की भी जरूरत नहीं होती। अगर थोड़ा-बहुत खर्च



बालक डिजाइन बना रहा है



करना भी पड़े तो बाल-हित के लिये करना ही चाहिये। जब हम अन्ध-विश्वासों, रस्म-रिवाजों, 'खेल-तमाशों, नाटक-सिनेमाओं, सर्दी-गर्मियों में अपना सब कुछ बेचकर, कर्ज लेकर भी खर्च करने में आगा-पीछा नहीं देखते, तो अपने प्यारे बालकों के लिये हम कुछ भी खर्च नहीं कर सकते क्या? दुख तो यह है कि बालक के बारे में हम सोचते ही नहीं। उसकी हमें कुछ चिन्ता ही नहीं, परवाह ही नहीं। हम तो ऐसा मानते हैं कि बालक कुछ कर ही नहीं सकते। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, हमारी यह धारणा बिल्कुल गलत है। इसमें जरा भी सार नहीं है। ऐसा समझना हमारी नासमझी है, बाल-स्वभाव के प्रति हमारी अज्ञानता का सूचक है। बालक एक नहीं, अनेक काम कर सकते हैं। योगी अरविन्द ने बिल्कुल ठीक कहा है कि बालक एक जबरदस्त अन्वेषक, विश्लेषक और खोजी है। इसलिये यह मिथ्या भ्रम अपने दिमाग से निकाल दें कि बालक कुछ कर ही नहीं सकता। आपकी सुविधा और जानकारी के लिये कुछ काम नीचे दिये जाते हैं, जिन्हें बच्चे बड़ी सुगमता से और हँसते-हँसते कर सकते हैं।

## कामों की सूची

१—बच्चे अपने सब निजी काम बड़े चाव से करते हैं। आम तौर पर माता-पिता बालकों को कमजोर समझ कर उनका सब काम खुद कर देते हैं। यह उनकी सख्त गलती है। बच्चों के लिये आप तो केवल सुविधा जुटा दें, और दो-चार बार उन्हें काम करके दिखा दें। फिर दूर खड़े-खड़े देखें कि नहाना, कुल्ला करना, कपड़े पहनना, बटन लगाना और खोलना, जूते साफ करना, पालिश करना, सफाई करना, चीजों को यथास्थान रखना, कपड़े धोना, बर्तन माँजना, खाना परोसना आदि सब काम वे कितनी फुर्ती और चाव से करते हैं।

इसके अलावा घर में बड़े-बूढ़े जो काम करते हैं, वे सब काम भी बालक कर सकते हैं। घर में माता को साग काटते देख कर बालक भी

चाकू उठा कर खुद साग काटने लगता है। इसी प्रकार रोटी बनाना आदि दूसरे काम भी वह करना चाहता है। जब इन कामों से उसे रोका जाता है तो छिप कर वह इन सब कामों को करता है। बढ़ई का बच्चा बढ़ई के काम करना चाहता है। लुहार का बच्चा लुहार के काम करना चाहता है। ऐसे मौकों को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये। ऐसा अवसर आते ही बालक की आयु के मुताबिक औजारों का प्रबन्ध कर देना चाहिये। लन्दन के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री व समरहिल स्कूल के संचालक मि० नील ने अपनी पुस्तक में लिखा है—"बच्चे को छोटी आरी, कुल्हाड़ी और चाकू से काम करने दो। मेरे स्कूल का सबसे छोटा बालक, जिसकी उम्र सात साल की है, हर प्रकार के औजार इस्तेमाल करता है। उसके मुकाबले में मैं अपनी उँगलियाँ अधिक बार काट लेता हूँ। सात और आठ साल के बच्चे टाइप की मशीन पर बिना उसे खराब किये टाइप कर सकते हैं।"

छोटे-मोटे सेवा के काम भी बालक चाव-भाव से करते हैं। किसी के लिये पानी मँगवाना हो तो उनसे मँगवाएँ, दौड़ कर लाएँगे। बाजार से कुछ मँगवाना हो तो उन्हें भेजें। खुशी-खुशी जायेंगे। लेकिन जबरन कोई काम उनसे हरगिज न करवाएँ। काम कराने के लिये न सजा दें, और न लालच।

२—लकड़ी की ईंटों और घन को बालक बहुत पसन्द करते हैं। इनसे वे मीनारें, दीवारें, घर, कुएँ, बावली, तालाब आदि बनाते हैं और बिगाड़ते हैं। इनके अलावा इनसे बालक और भी तरह-तरह की आकृतियाँ बनाते हैं। उनकी आत्मा छोटे रूप में लेकिन सम्पूर्ण कल्पना से विविध आकारों की रचना करती है।

३—दियासलाई की डिब्बियों से बालक खूब खेलते हैं। उनसे दीवार, चबूतरे, तालाब, कुएँ, रेल आदि बनाते हैं। दियासलाइयों से बालक जो ड़

और बाकी सीखते हैं। उन्हें जमीन पर रख कर तरह-तरह की सूरतें बनाते हैं।

४—बालू-रेत तो बालकों की खास चीज है। इस पर वे खूब लोटते हैं, फिसलते हैं और खेलते हैं; कुएँ, बाग, सड़कें, किले, पहाड़, नदी, कमरे आदि बनाते हैं। बालकों की बनाई हुई इन चीजों को देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है।

५—चित्र बनाना और देखना बालकों को बहुत अच्छा लगता है। बालक पशु-पक्षी, पतिंगों, बाजार और आसपास में होने वाली घटनाओं के चित्र देखना बहुत पसन्द करते हैं। चित्र देते समय बालकों को समझा दें कि वे उन्हें इधर-उधर न फेंक कर अच्छी तरह सँभाल कर रक्खें। बालक खुद जो चित्र बनाएँ उनका आप मजाक न उड़ायें। धीरे-धीरे वे अच्छे चित्र बनाने लगेंगे। बालकों के बनाये हुए टेढ़े-मेढ़े चित्रों की बुराई करके बालकों में छिपे हुए भावी चित्रकारों की आप हत्या कर देंगे। चित्र बनाने के लिये काला तख्ता तथा कुछ सफेद और रंगीन चाक दें। कुछ भी न हो तो धूल में ही उँगली से लकीरें खींचने दें या लिपी हुई जमीन पर चाक से कुछ बनाने दें। इससे खर्च भी कुछ नहीं होता और बालक का विकास भी खूब होता है।

६—कैंची और रद्दी कागजों से बालकों को खिलौने, चित्र, जाली, बेलें, अक्षर आदि बनाने दें। पुराने अखबारों के चित्र काट कर उनके चारों ओर बेल काटकर लगाने दें। चिपकाने के लिये एक गोंददानी और कचरा डालने के लिये एक टोकरी दे दें। बालक जो चित्र आदि बनायें, उनका अल्बम बनाया जा सकता है। इधर-उधर जो चित्र मिलें उनके भी अल्बम बनाये जा सकते हैं, जैसे—देश-विदेश के नेताओं, पशु-पक्षियों, इमारतों का अल्बम, पहाड़ी दृश्यों का अल्बम, टिकटों और सिक्कों का अल्बम, फूल-पत्तों का अल्बम आदि।

७—बालकों को नई चीजें बनाने का बड़ा शौक होता है। वे फूलों का हार बनाते हैं। मोतियों की माला बनाते हैं। गत्ते और कागज के खिलौने, फिरकियाँ, पतंग, बेल और लिफाफे आदि बनाते हैं। रद्दी कागजों की लुगदी से तरह-तरह की चीजें बना सकते हैं।

८—आलपीन और कागज से भी बालक तरह-तरह के खेल खेलते हैं। छोटे बालकों को आलपीन की गड्डी में से आलपीन निकालना और रखना बड़ा अच्छा लगता है। बड़े बालक आलपीनों से कागजों में सूराख करके तरह-तरह की शक्लें बनाते हैं। आलपीनों को भिन्न-भिन्न तरीकों से सजा कर नई-नई सूरतें बनाई जा सकती हैं। गिनती का खेल भी खेला जा सकता है। बबूल का काँटा भी आलपीन का काम दे सकता है।

९—रंग-बिरंगे छोटे-छोटे टुकड़ों से छोटे-छोटे बालक खूब खेलते हैं। रूमाल की तह करते हैं, फिर खोलते हैं, जोड़ते हैं और तरह-तरह से सजाते हैं। कपड़े के टुकड़े रूमाल के साइज के होने चाहिये।

१०—मिली हुई चीजों को अलग-अलग करने में भी बालकों को बड़ा मजा आता है। रंग-बिरंगे मोतियों, गोलियों तथा कई तरह के मिले हुए अनाजों के दानों को अलग करने का काम बालकों को बड़ा पसन्द है। वे बार-बार इन्हें मिलाते हैं और अलग करते हैं। इससे उनके देखने और वर्गीकरण करने की शक्ति बढ़ती है।

११—मिट्टी के खिलौने बनाना तो बालकों को बहुत ही पसन्द है। वे इस काम में मस्त हो जाते हैं। अपने-अपने अनुभव के अनुसार वे तरह-तरह के फल, जानवर, बर्तन, हवाई-जहाज, घर आदि बनाते हैं। मिट्टी पर पैसे की छाप लगा कर खेलते हैं। नई-नई चीजें बनाते और बिगाड़ते हैं। गारे से ईंट बनाने का काम भी दिया जा सकता है। मिट्टी के खेल

भी सिखाये जा सकते हैं। बच्चों से कहिये "आओ आज सब्जी की दुकान लगायें।" मिट्टी पहले से ही तैयार रखें। अब देखिये बालक कितने चाव से गाजर, बैंगन आदि बनाते हैं। कभी हलवाई और फल की दुकान लगायें। इससे बालकों को चीजों का ज्ञान, नाम व बनाना आयेगा। इतना ही नहीं, सजाना, लगाना, बेचना व खरीदना भी आ जायेगा।

१२—रस्सी बँटना, ताड़ के पत्तों से छोटे-छोटे पंखे बनाना, तकली से सूत कातना, जिल्द बाँधना आदि उपयोगी काम भी बालक आसानी से कर सकते हैं।

१३—बागवानी का काम बालक बड़ी दिलचस्पी से करते हैं। पौधों को पानी देना, बीज बोना, क्यारियाँ बनाना, बोने के लिये मिट्टी तैयार करना आदि सब काम भागते-दौड़ते करते हैं। काम के साथ-साथ कसरत भी होती है और ज्ञान भी बढ़ता है।

१४—जानवरों का पालना बालकों के लिये बड़ा अच्छा काम है। बालकों को तोता, मैना, कुत्ता, बिल्ली, खरगोश, बुलबुल आदि पालने का मौका देना चाहिये। पशु-पक्षियों के परिचय से बालक में प्रेम पैदा होता है। सार-संभाल की आदत का विकास होता है।

१५—संग्रह करने का बालकों को बड़ा शौक होता है। वे नई-नई चीजें खोजते और जमा करते रहते हैं। बालकों की जेब टटोल कर देखिये तो उसमें आपको कंकड़-पत्थर, काँच की गोलियाँ, कागज के रंग-बिरंगे टुकड़ों आदि का एक अच्छा खासा खजाना मिलेगा। इसलिये संग्रह करने की बालकों को आजादी होनी चाहिये। जो बच्चे लिखना जानते हों वे अपनी संग्रह की हुई चीजों, जैसे फूल-पत्तों, पंख, घास, शङ्ख, सीपी, चित्र आदि का नाम भी लिख लें तो बेहतर होगा। संग्रह-वृत्ति को उचित ढंग से विकसित होने का मौका दिया जाये तो यह ज्ञान-संचय का जबरदस्त

साधन बन सकती है। मिसाल के तौर पर फूल-पत्तों से बालकों को वनस्पति-शास्त्र का परिचय और भिन्न-भिन्न देशों के टिकटों से उन देशों की बहुत-सी बातों का ज्ञान खेल-खेल में कराया जा सकता है।

१६—सिलाई व कटाई का काम भी बालक सुगमता से कर सकते हैं। सबसे पहले बच्चों को सुई का पकड़ना, धागा पिरोना, और सुई का इस्तेमाल करना अच्छी तरह बता दें। धागे रंग-बिरंगे दें। धागों से बालक तरह-तरह के बेल-बूटे बनायेंगे। शुरू में बड़ी चीज सीने के लिये न दें। कसीदा सिलाई के बाद शुरू करें।

१७—सैर का बालकों को बड़ा शौक होता है। सुबह-शाम उन्हें सैर को ले जायें, कभी बाग में, कभी खेत में, कभी स्टेशन पर, कभी बाजार में। चलने में जल्दी न करें। बालक जहाँ ठहरना चाहें, उन्हें ठहरने दें। उनके सवालों का शान्ति से जवाब दें। उन्हें डराएँ-धमकाएँ नहीं। छुट्टी के दिन उन्हें कभी चिड़ियाघर ले जायँ, कभी अजायबघर। कभी चित्रगृह दिखायें और कभी प्रदर्शनी। जंगल, पहाड़ और नदी की भी सैर करायें। कभी मिलों, कारखानों, प्रयोगशालाओं, राष्ट्रीय मेलों और जल्सों में ले जायँ। कभी अपने मित्रों के घर पर भी ले जायँ। रास्ते में बालक जो भी सवाल पूछे, उसका प्रेम से जवाब दें। उनकी जिज्ञासा-वृत्ति को सन्तुष्ट करें।

१८—आँखों का खेल बड़ा ही मनोरंजक है। सैर में बालकों ने जो कुछ देखा, उसके बारे में पूछिये। जो सब से अधिक चीजों के नाम बताए, वह आँख वाला हुआ, और जो कुछ भी न बता सके वह आँख बन्द करके चलने वाला हुआ। कभी-कभी सोच कर बताने के लिये दस-पाँच मिनट का समय भी दे दें। लेकिन भूल कर भी हार-जीत की बात बालकों के दिमाग में न आने दें। जो कुछ भी न बता सके तो उसे भी

शर्मिन्दा न करें और न उसकी आलोचना ही करें। अपने हाव-भाव से भी यह जाहिर न करें कि आप उससे नाखुश हैं।

१९—शब्द-रचना भी बालकों के लिये एक अच्छा काम है। एक बालक एक शब्द बोले। दूसरा उसके आखिरी अक्षर से आरम्भ होने वाला शब्द बताये। एक-दो बार बालकों को यह खेल अच्छी तरह समझा दें और फिर देखें कि वे इसमें कितने मग्न हो जाते हैं। शब्द इस प्रकार चलेंगे—रमेश, शङ्कर, रामपाल, लालच, चावल, लकड़ी, इलायची आदि। बस शब्दों की झड़ी लग जायगी। इस तरह बालकों को कितने ही शब्द याद हो जायेंगे! कुछ बड़े लड़के अन्त्याक्षरी का खेल खेल सकते हैं। इससे बालकों को कितने ही दोहे और पद याद हो जायँगे।

२०—बालकों के लिये कुछ सुन्दर छोटी-छोटी शब्द-पोथियाँ बना दें। एक पोथी में तीस-चालीस शब्द काफी होंगे। एक सफे पर एक ही शब्द हो जो मोटी कलम से बड़ा सुन्दर लिखा हो। ये शब्द बालकों के जीवन और उनके आस-पास की दुनियाँ से सम्बन्ध रखने वाले हों। इसके अलावा अन्य विषयों और विज्ञानों के शब्द भी होने चाहिये। नये-नये शब्दों के लिये बालक बड़े बेचैन रहते हैं। शब्द बालकों को बड़ी जल्दी याद हो जाते हैं। धीरे-धीरे बालक अपनी शब्द-पोथियाँ खुद बनायेंगे। शब्दों के अर्थ बताने की कोशिश और जल्दी न करें। बालक पूछें तो जरूर बताएँ।

२१—शब्द-पोथी की तरह वाक्य-पोथियाँ बना दें। ऐसे वाक्य बनायें, जिनमें एक शब्द बार-बार आये, जैसे—गाय घास खाती है। गाय दूध देती है। गाय सफेद है आदि। ऐसे वाक्य बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं।

२२—"पढ़ो और करो" पोथी तो ऊपर वाली दोनों पोथियों से भी मजेदार और दिलचस्प है। इस पोथी में इस ढंग के वाक्य होने चाहिये—

चार क़दम चलो। बीस तक गिनती गिनो। लँगड़ा कर चलो। मुर्गे की तरह बोलो। आँख बन्द करके चलो। अपनी कलम लाओ, आदि।

२३—बड़े बालकों के लिये सुन्दर और सचित्र पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ घर में रखें। पुस्तकें मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखी हों। छपाई, लिखाई सुन्दर और आकर्षक हो। पढ़ने में बालकों को बड़ा आनन्द आता है। वे एक पुस्तक को बार-बार पढ़ते हैं। पुस्तकें बहुत बड़ी न हों। भाषा सरल हो। पुस्तकों के अलावा अल्बमों और नक्शों की व्यवस्था भी हो सके तो अच्छा है। जो खर्च कर सकते हों उन्हें इन चीजों पर अवश्य खर्च करना चाहिये। नक्शे दीवार पर इस ढंग से टँगे हों कि बालकों को उन्हें देखने में जरा भी कठिनाई न हो। दुनियाँ का नक्शा भी होना चाहिये। एक-दो छोटे ग्लोब भी हों। भूगोल सीखने में बालक को इनसे बड़ी सहायता मिलेगी।

२४—कभी स्टेशनरी की दुकान लगा दें और उसमें होल्डर, पेंसिल, रबड़, कापियाँ आदि सजा दें। हर एक की कीमत लिख कर लगा दें और बच्चों को कह दें—"देखो हमने दुकान लगाई है। सब सामान रखा है। सब पर क़ीमत लगी है। जिसको जो चीज चाहिये, उसकी कीमत पास रखे सन्दूक में डाल दो और चीज ले लो। वहाँ कोई आदमी नहीं है। चीज लेते जाना और दाम डालते जाना।" जब बालक खेल रहे हों तो आप दूर बैठे चुपचाप देखते रहें कि बच्चों ने दाम डाले या नहीं। किसी ने न भी डाले हों तो कुछ न कहें। सिर्फ नाम नोट कर लें। बच्चों को यह पता हरगिज न लगे कि आप उन्हें देख रहे हैं। आखिर में सामान और दाम सँभालें। यदि ठीक हों तो कोई बात नहीं। यदि किसी ने कुछ गड़बड़ की हो तो प्रेम से समझा दें कि माल के दाम जरूर देने चाहिये। इस प्रकार किताबों, फलों आदि के खेल खेलाये जा सकते हैं। इन खेलों से बच्चों को दाम देकर माल लेने, चोरी न करने, किसी का माल आँख बचा कर न उठाने की आदत पड़ जायगी।

२५—शब्दों और पहाड़ों के खेल खिलाएँ। खुद बनालें या बने बनाये मँगालें। साँप और सीढ़ी तथा अन्य किण्डर गार्टन के खेल बालक घंटों खेलते रहते हैं। गिनती, अक्षर आदि सिखाने के ताश घर पर बनालें या बने बनाये खरीद लें। आजकल बालोपयोगी कितने ही बौद्धिक खेल निकल आये हैं, उन्हें मँगालें।

२६—डा० मोन्टीसोरी के इन्द्रिय-विकास के साधन छोटे बालकों के लिए बड़े ही गजब के हैं। घंटों इनसे खेलते हैं और अपनी इन्द्रियों का विकास करते हैं। भौमितिक आकृतियाँ भी बड़े काम की हैं। इनमें बालक लकीरें खींच कर लेखन की तैयारी करते हैं। ये आकृतियाँ घर पर भी गत्ते की बनाई जा सकती हैं। जिन्होंने बाल-मन्दिरों को देखा है वे जानते हैं कि इन साधनों में बालक कितना रस लेते हैं! वे इतने मस्त हो जाते हैं कि अपने को भूल जाते हैं।

२७—बाल-उपहार में बालकों को ऐसी चीजें दें, जो उनके काम की हों, जैसे महापुरुषों के चित्र, जानवरों के चित्र, पक्षियों के चित्र, फूलों और वृक्षों के चित्र, जंगलों और पहाड़ों के मनोहर चित्र, मिट्टी, टीन या लकड़ी की बनी हुई चीजें, मिकानों, औजारों की पेटी, तराजू-बाट, फुटरूल, गज, आतशी शीशा, मिक्नातीस आदि। चित्रों को देख कर बालक खुश होंगे। नये चित्र बनाने की उनमें इच्छा पैदा होगी। औजारों से वे तरह-तरह की चीजें बनायेंगे।

२८—रात का प्रोग्राम बड़ा ही मनोरंजक और लाभदायक बन ग कता है। रात को बालकों को घर का हाल, मुहल्ले का हाल, ग्राम का हाल सुनायें। प्रति दिन होने वाली घटनाओं और देश-विदेश की बातों की चर्चा करें। पुस्तक और अखबार रोचक ढंग से सुनाएँ। अपने और बच्चों के बचपन की बातें सुनाएँ। हाव-भाव के साथ कहानी-कविता सुनाएँ। लेकिन अन्ध-विश्वासों, भूतों-प्रेतों, जादू-टोनों तथा इस प्रकार

की अन्ट-शन्ट कहानियाँ बालकों को हरगिज न सुनाएँ। नीति और धर्म का उपदेश कभी न दें। जो कुछ भी हो स्वाभाविक हो। सुनी हुई कहानी सुनाने का आग्रह न करें! बालकों की इच्छा के विरुद्ध कुछ न सुनाएँ। जब तक वे सुनना चाहें तभी तक सुनाएँ। बालकों की कहानियाँ, कविताएँ, दूसरी बातें भी धैर्य से सुनें। उनकी नुक्ताचीनी हरगिज न करें। अगर बालक कुछ सुनना न चाहें तो उन्हें मजबूर न करें।

'२९—नाटक खेलना बालकों के लिये बड़ी आनन्ददायक प्रवृत्ति है। नाटकों से बालकों को स्वाभाविक प्रेम होता है। अभिनय एक कला है। इसके द्वारा बालक अपने अन्दरूनी भावों को प्रकट करते हैं। नकल उतारने में बालक कमाल करते हैं। बड़ों की नकल उतारते हैं। जानवरों की नकल उतारते हैं। चाल-ढाल, हाव-भाव, बोली आदि की हू-बहू नकल उतारते हैं। सिपाही बनते हैं, डाकिये बनते हैं, मास्टर बनते हैं, नौकर बनते हैं, तोंद निकाल कर सेठ जी बनते हैं। डाक्टर, वकील और जज बनते हैं। शेर-चीता, घोड़ा-बैल, कुत्ता-बिल्ली आदि बनते हैं। मोटरें हाँकते हैं, रेल चलाते हैं, घोड़े पर सवार होते हैं, लगाम डाल कर घोड़ा दौड़ाते हैं। वर्ड्सवर्थ ने ठीक ही कहा है कि बालक के सब काम समाप्त न होने वाली नकलें हैं।

बड़े होने पर बालक अपने पढ़े हुए या आपके बताये हुए नाटक खेलते हैं। यदि आप निर्दोष नाटक चुनदें तो नाटक करने की उनकी यह प्रवृत्ति खूब सरल हो जाये।

कितने ही घरों में बच्चों को नाटक से मना किया जाता है; यह ठीक नहीं है। बच्चे नाटक खेलना चाहें तो खेलने दें। हाँ, इतना अवश्य देखते रहें कि उनके नाटकों में गँवारूपन या गुण्डापन न घुसने पाये। इसके अलावा नाटक की ऊपरी बातों पर जोर न दिया जाय। घर की चीजों से ही काम ले लिया जाय। घर का आँगन रंगभूमि है। घर के

दरवाजे पर्दे हैं। पिता जी की छड़ी, कभी सेठ जी की लकड़ी, कभी मास्टर साहब का बेंत, कभी घोड़ा आदि अनेक रूप धारण कर सकती है।

नाटक स्वाभाविक हों, रटाये बिल्कुल न जाएँ। नाटक की कथा बालक समझ लें, इतना ही काफी है। फिर बालक जैसा चाहें उन्हें अपने आप करने दें।

३०—वैज्ञानिक खेलों में बालक बड़ा रस लेते हैं। सुविधा और अवस्थानुसार इनकी व्यवस्था घर में की जा सकती है। वैज्ञानिक खेलों पर कुछ पुस्तकें निकली हैं। बाल मासिक पत्रों में भी इनकी चर्चा रहती है। माता-पिता उनकी सहायता से वैज्ञानिक खेल बच्चों को खेलाएँ।

इस प्रकार बच्चों के लिये अनेक प्रवृत्तियाँ हैं। बालकों को मौका दिया जाय तो वे खुद भी अपने लिये अनगिनत खेल ईजाद कर लेते हैं, तरह-तरह की प्रवृत्तियाँ खोज निकालते हैं।

## काम देने से पहले आवश्यक सुविधाएँ जुटा दें

लेकिन केवल प्रवृत्तियों के नाम जान लेने से ही आपका काम न चलेगा। बालक को काम देने से पहले आपको कुछ करना होगा, सोचना होगा।

सबसे पहले प्रवृत्ति करने के लिये घर के किसी कमरे में या कमरे के किसी कोने में या बरामदे में या कहीं भी अपनी सुविधानुसार कोई स्थान निश्चित कर दें।

प्रवृत्ति के लिये साधन-सामग्री जुटा दें—जैसे कागज, पेन्सिल, चाक, क़ैंची, गोंददानी, रूमाल, थैला या छोटा-सा बक्स, मिट्टी, बालू-रेत, छोटे-छोटे औजार आदि।

बालक को खूब अच्छी तरह समझा दें कि वह सब चीजों को कैसे साफ सुथरा और सँभाल कर रखे, कैसे इस्तेमाल करे, कहाँ रखे और कैसे सजाये।

व्यवस्था रखने के लिये कुछ दो-चार मोटे नियम बना दें और उनकी आवश्यकता बालक को अच्छी तरह समझा दें। उदाहरण के तौर पर बालक को बता दें कि कोई बात पूछनी हो, कठिनाई हल करनी हो तो निश्चित समय पर पूछे। प्रवृत्ति करते समय शान्त रहे, गड़बड़ न करे, काम कर चुकने के बाद हाथ धोए और अपनी सब चीजों को साफ करके यथास्थान जमा दे, इधर-उधर नहीं पड़ी रहने दे।

गर्मी में बालक को केवल एक जाँघिया पहना दें। जाड़े में गर्म बनियान या बण्डी पहना दें। अधिक कपड़े उस पर न लादें। कभी कोई खराब हो जाय तो डाँटें नहीं।

## बिना माँगे सहायता आदि न दीजिए

साधन जुटाने के बाद बालक को अपनी प्रवृत्ति खुद चुनने दें, और अपनी इच्छानुसार उसे काम करने दें, बिना माँगे सहायता हरगिज न दें, काम करते हुए बालक को रोकें-टोकें नहीं, वाह-वाह, और तारीफ भी न करें। चाहें तो दूर से चुपचाप देखते रहें।

## इच्छा-विरुद्ध काम के लिए विवश न कीजिए

बालक को ऐसी प्रवृत्ति करने के लिये कतई मजबूर न करें जिसे वह आपकी सहायता के बिना कर न सके या जो उसके लायक न हो। सच्ची प्रवृत्ति वही है जो बालक को अपनी ओर खींचती है, प्रसन्न रखती है और एकाग्र करती है।

## बालक की प्रवृत्ति के बारे में कुछ सुझाव

बालक के बनाये चित्रों और खिलौनों आदि की निन्दा न करें। बालक बालक ही है, वह आप जैसी चीजें नहीं बना सकता। प्रोत्साहन न दे सकें तो कम से कम उसे निराश और शर्मिन्दा तो न करें। बालक की बनाई हुई चीजों का संग्रह रक्खें।

किसी प्रवृत्ति को करते-करते बालक थक जाय या माँ से कराने लगे तो समझना चाहिये कि उस प्रवृत्ति से बालक का जी ऊब गया है। ऐसा अवसर आने पर इस ढंग से बालक को उस प्रवृत्ति से हटा लें कि उसे ज़रा भी आघात न पहुँचे।

अनेक अव्यवस्थित कामों की निस्बत एक व्यवस्थित काम देना ही ठीक है। जितना-जितना प्रबन्ध कर सकें, उतना-उतना ही आगे बढ़ें, छलाँग न मारें।

बालक जो कुछ करे उसका गहराई से अवलोकन करते रहें। इससे बालक की रुचि का आपको पता लग जायगा।

प्रवृत्ति देते समय लड़के-लड़की का भेद हरगिज न करें, प्रवृत्ति दोनों के लिये ही आवश्यक है।

इस बात को क्षण भर के लिये भी न भूलें कि प्रवृत्ति बालक के लिये है, बालक प्रवृत्ति के लिये नहीं! आप तो प्रवृत्ति के लिये अनुकूलता पैदा कर दें। फिर प्रवृत्ति करने के लिये बालक को विवश न करें, बालक जो भी करे अपनी इच्छानुसार और खुशी से करे।

———

# बालक के खेल खिलौने

## खेल का महत्त्व

खेल का बालक के जीवन में बड़ा महत्त्व है। खेल बालक की स्वाभाविक और प्राकृतिक प्रवृत्ति है। खेल बालक के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि पानी, प्रकाश और हवा। खेल का बालक को इतना शौक होता है कि वह खेल के मुकाबले में भोजन और नींद तक को भूल जाता है। सर्दी, गर्मी, चोट और बीमारी तक की परवाह नहीं करता। पसीना-पसीना हो जाने पर भी वह खेलना नहीं छोड़ता। पाँच साल के विनोद को जब मैं लँगोट कसे घण्टों धूल-मिट्टी में खेलते और अखाड़े में कुश्ती लड़ते देखता था, तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रहती थी। उसके माता-पिता चिल्लाते थे, धमकाते थे, रोटी न देने की धमकी देते थे, लेकिन विनोद उनकी एक न सुनता था। मौका मिलते ही माता-पिता की आँख बचा कर झट से अखाड़े में जा धमकता था। जब इस खेल से जी उकता जाता था तो गाने, लिखने और पढ़ने का खेल चलता था। यही हाल एक साल की मञ्जु का था। वह पानी और रेत में घण्टों खेलती रहती थी। खाना-पीना सब भूल जाती थी। स्व० गिजुभाई के बाल-मन्दिर के बालकों की शांति का खेल तो मैं जीवनपर्यन्त भी नहीं भूल सकता। सवा-सौ बच्चों को चुपचाप बिना जरा-सी आवाज किये यह खेल खेलते देख कर आप ही आप मेरे दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। उन बच्चों की एक-एक क्रिया आँखें खोलने वाली थी। अपने-अपने खेल में वे इतने मग्न हो जाते थे कि अपने आस-पास की दुनिया को बिल्कुल भूल जाते थे। एक दिन की घटना है कि एक हवाई जहाज घूँ-घूँ करता आसमान पर मँडरा रहा था।

काम करते और राह चलते अधिकांश लोगों की नजर उसकी तरफ खिंच गई। लेकिन बाल-मन्दिर के बच्चे अपने-अपने काम में मस्त थे, उन्होंने आँख उठा कर एक बार भी उसकी तरफ देखने का प्रयत्न नहीं किया। सब अपने-अपने खेल और काम में उसी तरह जुटे रहे। उनकी एकाग्रता, एकनिष्ठा योगियों की समाधि को भी मात करती थी। और मजा यह है कि बिना नियन्त्रण के बालक यह सब कुछ कर रहे थे। डण्डा लेकर जमादार की तरह उनके पीछे-पीछे कोई नहीं फिर रहा था। वे पूर्णतयां स्वतन्त्र थे। उन पर किसी तरह की पाबन्दी नहीं लगाई गई थी। वे जो कुछ करते थे, अपनी खुशी से करते थे, अपना विकास करने के लिये। इस दृश्य का मेरे हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। १९३४ ई० में मैंने पहले पहल यह दृश्य देखा था, किन्तु आज भी मानों वह ज्यों का त्यों मेरे मानसचक्षुओं के आगे घूम रहा है।

## खेल का महत्त्व

खेल बच्चे की आन्तरिक भूख है। खेल के द्वारा बच्चा अपने शरीर और मन पर काबू पाना सीखता है। खेल के द्वारा बच्चा अपने को स्वतन्त्र और स्वाधीन बनाता है। खेलते-खेलते बच्चा इतनी उन्नति और प्रगति कर लेता है कि वह जैसे सोचता है वैसे ही करने लगता है। उसकी कथनी और करनी में कोई भेद नहीं रहता। यह विकास की चरमसीमा नहीं तो और क्या है ? खेल के द्वारा बच्चा केवल शारीरिक और मानसिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक विकास भी करता है।

खेल सचमुच मानव-जीवन की तैयारी है। बालक बचपन में जैसे खेल खेलता है, भविष्य में वैसा ही बन जाता है।

## सामूहिक खेलों से शिक्षा

बालक सामाजिक प्राणी है। तीन-चार साल की आयु में ही वह सामूहिक खेलों में आनन्द लेने लगता है। उन्हीं सामूहिक खेलों में

बालक अपने साथियों की मदद करना, उनके साथ स्नेह और सहानुभूति दिखाना, उनका अनुकरण करना और पथ-प्रदर्शन करना, उनके दुःख में दुखी होना और सुख में सुखी होना सीख जाता है। इन बातों के सीखने में बालक को वर्षों नहीं लगते। केवल छः वर्षों में बच्चा इन सब बातों को सीख जाता है—खेल-खेल में, बिना उपदेश के और बिना दबाव के।

## खेल का अवसर न मिलने से हानि

इसके विपरीत जिस बालक को खेल का मौका नहीं दिया जाता, घर की चारदीवारी में कैद करके रखा जाता है, वह भावी जीवन में बिल्कुल असफल रहता है। उसकी सब शक्तियों पर पानी फिर जाता है। जैसे-तैसे करके वह अपना जीवन बिताता है। उसमें न आत्मविश्वास होता है और न इच्छा-शक्ति। प्रत्येक छोटे-बड़े काम से वह जी चुराता है, अलग-अलग रहने लगता है, किसी से बात नहीं करता। बचपन में जिस बच्चे को गोद में अधिक रखा जाता है, हिलने-डुलने नहीं दिया जाता, वह बालक वर्षों तक गूँगा-बहरा और लँगड़ा-लूला-सा रहता है। वह तीन-चार वर्ष का हो जाने पर भी चल-फिर नहीं सकता, बोल नहीं सकता, चलने-फिरने और बोलने में उसे बड़ा आलस आता है, उसका सारा दिन रोने-धोने में ही व्यतीत होता है।

## बालक को निर्विघ्न रूप से खेलने दीजिए

यह कभी न भूलना चाहिये कि बालक की प्रत्येक क्रिया खेल है। बालक का देखना, सुनना, बोलना, हाथ-पैर मारना, करवट बदलना, आदि सब क्रियाएँ खेल हैं। बालक हमसे और कुछ नहीं चाहता, केवल अपनी क्रियाओं के लिये सहूलियत और व्यवस्था चाहता है। इतना कर देने पर हमें दूर हट जाना चाहिये। बच्चे को स्वयं आजादी से खेलने



बालक फिसलन से फिसल रहा है



देना चाहिये। यह भय दिल से निकाल देना चाहिये कि खेलते-खेलते बच्चा गिर पड़ेगा, चोट खा लेगा। बच्चा बेबकूफ नहीं होता। वह बड़ा समझदार होता है। फूँक-फूँक कर, तोल-तोल कर कदम रखता है। चोट खाने की सम्भावना ही नहीं रहती। फिर भी अगर मामूली-सी चोट लग जाय तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। बच्चा ऐसी चोट का ख्याल ही नहीं करता। हमें अपनी राय और योजना बच्चे पर नहीं लादनी चाहिये, उसका नेता या पथ-प्रदर्शक भी नहीं बनना चाहिये। खेलते हुए बच्चे को रोकना भी नहीं चाहिये, बिना माँगे सहायता भी नहीं देनी चाहिये। हमारे दखल देने से बच्चा घबरा जाता है। उसे बड़ा क्रोध आता है। उसकी एकाग्रता भंग हो जाती है। सोचने की शक्ति और जिम्मेदारी की भावना पैदा होने नहीं पाती। वह असल रूप में हमारे सामने नहीं आता। हम उसके विकास का ठीक-ठीक अन्दाजा नहीं लगा सकते। हाँ, अगर बालक की जान का खतरा हो तो हमें अवश्य बीच में पड़ कर उसकी रक्षा करनी चाहिये। भोजन या सोने का समय हो गया हो तो भी प्रेम से समझा कर खल बन्द करा देना चाहिये।

## खेल और काम में कोई भेद नहीं

खेल बच्चे में प्रकृति-दत्त शक्ति है, प्रेरणा है। प्रकृति-दत्त शक्ति बच्चे को खेलने के लिये विवश करती है, बेचैन बनाती है, चुपचाप बैठने नहीं देती। यही शक्ति बालक को खेल में इतना व्यस्त कर देती है कि वह अपना सारा दिल-दिमाग इसी में लगा देता है। सिवाय इस काम के उसे और कुछ सूझता ही नहीं। परिणाम आदि की वह तनिक भी परवाह नहीं करता। इसलिये खेल को हम वह काम कह सकते हैं जिसमें बच्चा अपना सारा तन-मन लगा देता है और किसी किस्म के प्रोत्साहन या इनाम की इच्छा नहीं रखता। दूसरे शब्दों में काम खेल का उच्चतम विकास है। इसलिये बालक के जीवन में खेल और काम जैसी दो अलग-अलग

चीजें होती ही नहीं। पहले तो यही माना जाता था कि 'जब काम करो तो काम करो और जब खेलो तो खेलो', लेकिन नवीनतम खोजों ने इस सिद्धान्त को बिल्कुल गलत साबित कर दिया है। अब तो यह माना जाता है कि 'खेलो तब काम करो और काम करो तब खेलो'। इस प्रकार काम और खेल में कोई भेद नहीं है, नहीं होना चाहिये।

## खेल और काम में भेद का नतीजा

लेकिन हमें तो विश्वास ही नहीं होता कि खेल और काम एक ही हैं। यही वजह है कि आज भी हम खेल को अच्छा नहीं समझते। बालक का खेलना हमें बुरी तरह चुभता है। हमारा ख्याल है कि खेलने से पढ़ाई में हर्ज होगा। हमारे गले यह बात उतरती ही नहीं कि खेल-खेल में ही बालक सब कुछ लिख-पढ़ सकता है। इसीलिये हमारे आज के घर और स्कूल बालक के लिये जेल से भी बदतर बने हुए हैं। स्कूल से बालक इतना डरता है कि हर वक्त छुट्टी का घण्टा बजने की राह देखता रहता है। छुट्टी का घण्टा बजते ही वह इतना शोर-गुल मचाता और खुश होकर स्कूल से भागता है, जैसे वर्षों का कैदी जेल से छूटा हो। जब तक शिक्षा में खेल की स्प्रिट नहीं आयेगी, तब तक हमारे स्कूल जेलखाने ही बने रहेंगे। जब तक खेल और काम को अलग-अलग समझा जाता रहेगा तब तक कर्मठ व्यक्तियों का देश में अभाव ही रहेगा। कौन नहीं जानता कि हमारे देश में इतनी बेकारी होने पर भी सच्चे और ईमानदार काम करने वालों का सर्वथा अभाव है। काम के नाम से सब जी चुराते हैं। बिना निगरानी और डाँट-फटकार के कोई फली तक नहीं तोड़ कर देता। युवकों की दशा तो और भी दयनीय है। वे तो इतने अपाहिज हो गये हैं कि उन्हें कदम-कदम पर नौकर और साइकिल चाहिये। हाथ से कोई काम करना उनके लिये बड़ी भारी मुसीबत है।

**यह कहना अनुचित न होगा कि खेल और काम आज दो परस्पर-विरोधी चीजें बन गई हैं। जो काम खूब करता है, वह खेल से दूर भागता है और जो खेल में खूब दिलचस्पी लेता है, वह काम से नफरत करता है।** काम और खेल को अलग-अलग समझने का और नतीजा ही क्या हो सकता है ? समाज में फैले हुए इस विषैले रोग को दूर करने का एक ही उपाय है, और वह है खेल, काम और शिक्षा को एक ही समझना। गान्धीजी ने बिल्कुल ठीक कहा है—'बुनियादी शिक्षा में काम और खेल दो अलग-अलग नहीं हो सकते।' बालक के लिये तो सब कुछ खेल ही खेल है। इससे भी आगे बढ़ूँ तो कह सकता हूँ कि सारी जिन्दगी ही खेल है। मैं वर्षों से इसी तरह जिन्दा रहा हूँ। मुझे कभी ऐसा नहीं लगता कि चलो अब खेलने का वक्त है, खेलने चलें। मेरे लिये तो लेख लिखना भी खेल है। मेरे ख्याल में नई पीढ़ी के बच्चे खेल-खेल में ही शिक्षा ग्रहण करेंगे।

## प्रत्येक काम में खेल की वृत्ति

काम में खेल की स्पिरिट आते ही जीवन सुखमय हो जायगा। मानव विकृतियों का शिकार न होगा, चरित्र-भ्रष्ट न होगा। सब अपना काम हँसते-खेलते करेंगे। कोई किसी का शोषण नहीं करेगा। नौकर और मालिक का भेद-भाव उड़ जायगा। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब बचपन में बच्चे को अपनी रुचि के अनुसार काम करने का अवसर दिया जायगा। उनकी इच्छाओं और भावनाओं को कुचला न जायगा। इतना होने पर ही हमारे देश के बच्चे भी गुड्डे-गुड़ियों के या दूसरे नकली खेलों में अपना समय न गँवा कर उन्नत देशों के बच्चों* की तरह अपने जौहर दिखा सकेंगे। अगर हमने इस ओर ध्यान न दिया और बालकों को कैद

* उन्नत देशों के बच्चों का हाल विस्तार से पढ़ने के लिये लेखक बन्सीधर द्वारा लिखित 'देश-देश के बच्चे' पुस्तक पढ़िये।

करके ही रखा तो वे अन्दर ही अन्दर हमारे कट्टर शत्रु बन जायेंगे और नकली खेलों द्वारा अपनी दबी हुई इच्छाओं की तृप्ति करते रहेंगे।

## बालक और खिलौने

बच्चे के खिलौनों का सवाल बड़ा जटिल है। इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। उनके विचार कुछ भी हों, मैं तो यही मानता हूँ कि खिलौनों से बड़े बच्चों को कोई विशेष लाभ नहीं होता। अनुभव से पता चलता है कि खिलौनों में बड़ा बच्चा अधिक दिलचस्पी नहीं लेता। खिलौना मिलने पर पहले-पहल बच्चे को खुशी जरूर होती है। एक दिन के बाद या अधिक से अधिक दो-तीन दिन के बाद बालक उस खिलौने को फेंक देता है, या तोड़-फोड़ डालता है और नये खिलौने की माँग करता है। वह प्रतिदिन नया खिलौना चाहता है। जब नया खिलौना नहीं मिलता तो रोता है, हठ करता है, खाना-पीना छोड़ देता है, नया खिलौना लेकर ही दम लेता है। इस प्रकार बच्चे की हालत शराबी की सी हो जाती है।

## साधारण खिलौनों से लाभ के बजाय हानि

खिलौनों से बच्चे को आनन्द नहीं आता। नकली खिलौनों में सच्चे खेलों जैसा आनन्द कहाँ! सन्तोष कहाँ! तृप्ति कहाँ! खिलौने बच्चे को तरंगी बना देते हैं। वह काल्पनिक दुनिया में रहने लगता है। वास्तविक कामों से दूर भागने लगता है। वास्तविक काम करने की वृत्ति जब तृप्त नहीं होती तो वह विकृत हो जाता है और बच्चे को असली काम करने में मजा नहीं आता। उसके स्नायुओं की कसरत न होने से वे अविकसित रह जाते हैं, जिससे बड़ा होने पर वह कोई भी काम ठीक-ठीक नहीं कर सकता। खिलौने से बालक की जिज्ञासा-वृत्ति शान्त नहीं होती, तोड़-फोड़ की आदत पड़ जाती है।

## खिलौनों की जगह काम दीजिए

बच्चा तो प्रवृत्तिशील है। उसे काम देना चाहिये। हमारा यह खयाल बिल्कुल भ्रम मूलक है कि बच्चा काम से घबराता है। काम पर तो बच्चा भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ता है। रतन वीर, जिसे सब नटखट कहते हैं, अपनी रुचि का काम मिलने पर वह काम पर पिल पड़ता है। उसका नटखट पन, पता नहीं, कहाँ दुम दबा कर भाग जाता है। इसलिये बच्चे को खिलौनों के चक्कर में न डाल कर काम देने चाहियें।

## खिलौनों का चुनाव

हाँ, दो-ढाई साल तक के बच्चों को हम खिलौने दे सकते हैं। लेकिन खिलौनों के चुनाव में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। बच्चे के खिलौने सीधे-सादे और मजबूत हों, लेकिन कलात्मक ढंग से बने हुये होने चाहिये। बहुत भारी, बहुत महँगे और जल्दी टूटने वाले नहीं होने चाहिये। टूटने-फूटने वाले खिलौने बालक में तोड़ने-फोड़ने की आदत पैदा करते हैं। बच्चे को बहुत ज्यादा खिलौने नहीं देने चाहिये। इनका न तो बच्चा महत्त्व ही समझ सकेगा, न इनको साफ-सुथरे रख सकेगा और न ही इनकी सार-सँभाल कर सकेगा। इस प्रकार बच्चे में अस्वच्छता और अव्यवस्था आ जायेगी।

## खिलौनों में भिन्नता

खिलौने भिन्न-भिन्न प्रकार के होने चाहिये। मिसाल के तौर पर बच्चे के वास्ते गेंद खरीदनी हों तो वे भिन्न-भिन्न रंगों, भिन्न-भिन्न परिमाणों, भिन्न-भिन्न वजनों, भिन्न-भिन्न आकारों, भिन्न-भिन्न पदार्थों की तथा चिकनी, खुरदरी, मोटी, पतली, भारी, हल्की, नर्म और सख्त होनी चाहिये। इन विभिन्न प्रकार की गेंदों से बच्चे को रंगों का, आकारों का, पदार्थों का, मोटेपन, पतलेपन आदि का ज्ञान हो जायगा। इसके अलावा बच्चे को इनसे गिनती भी सिखाई जा सकती है।

## हिंसक और पेचीदा खिलौने वर्जित

बालक को बन्दूक, तलवार, भाला तथा लड़ाई के अन्य अस्त्र-शस्त्र आदि के खिलौने नहीं देने चाहिये। ऐसी पुस्तकें भी न दें, जिनमें लड़ाई की तारीफ की गई हो। ऐसे खिलौनों और पुस्तकों से बालक में हिंसा-वृत्ति पैदा होने की सम्भावना रहती है। बालक को बहुत पेचीदा और कलदार खिलौने भी नहीं देने चाहिये। ऐसे खिलौने बालक पसन्द नहीं करता। ऐसे खिलौने में बालक को कुछ करना-धरना नहीं होता। चुपचाप देखना पड़ता है। बालक की जिज्ञासा-वृत्ति शान्त नहीं होती और ना ही सोचने की शक्ति बढ़ती है। इसलिए नाराज होकर बालक उन्हें तोड़-फोड़ डालता है।

बालक को ऐसे खिलौने देने चाहिये, जिन्हें वह अलग करके फिर उसी तरह जोड़ सके। ऐसा करने से बालक की कल्पना-शक्ति बढ़ेगी, उसे सोचना पड़ेगा। अच्छा तो यह हो कि बालक को ऐसी चीजें दी जायँ जिनसे अपने खिलौने वह खुद ही बना सके।

## अवस्था के अनुसार खिलौनों में परिवर्तन

खिलौनों का चुनाव करने में बालक की मानसिक अवस्था में आवश्यकता और रुचि का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। होशियार बालक को मामूली खिलौना दिया गया तो वह उसमें कोई दिलचस्पी नहीं लेगा। छोटी उम्र के बच्चे को बड़ी उम्र के बालक का खिलौना देने से उसमें लघुता की भावना पैदा हो जायगी। इसलिये योग्यता और विकास के अनुसार खिलौने बदलते रहना चाहिये। दो साल के बच्चे को झुनझुना देना उसका अपमान करना है। इसके अलावा बड़ों को अपनी रुचि के खिलौने बालक को भूल कर भी नहीं देना चाहिये।

## खिलौनों के लिये स्थान

खिलौने रखने के लिये बालक को घर के किसी कोने में बिल्कुल अलग स्थान मिलना चाहिये, जहाँ वह इन्हें खूब सजा कर रख सके।

## सब बालकों के लिए खिलौनों की व्यवस्था

अगर घर में कई बालक हों तो उनके खिलौने अलग-अलग होने चाहिये। जबरदस्ती एक बालक का खिलौना छीन कर दूसरे बालक को नहीं देना चाहिये। अगर बालक अपना खिलौना न दे तो उसे यह कह कर चिढ़ाना भी नहीं चाहिये कि यह तो बड़ा लालची है, स्वार्थी है, किसी को कभी अपनी चीज नहीं देता। हमारे इस प्रकार के व्यवहार से बालकों में द्वेष-भाव पैदा हो जाता है, और वे एक दूसरे से जलने लगते हैं। आपस में खेलते-खेलते बालक खुद ही धीरे-धीरे एक दूसरे से चीज लेना-देना सीख जायेंगे। उपदेश या डाँट-फटकार से पारस्परिक सहयोग की भावना न आज तक पैदा हुई है और न आइन्दा कभी पैदा हो सकेगी। घर का प्रेम-पूर्ण और सहयोगपूर्ण वातावरण ही इस भावना का विकास कर सकता है। जहाँ लालच, स्वार्थ और संकीर्णता का दौर-दौरा हो, वहाँ बालक से उदारता और सहयोग की आशा रखना दुराशा मात्र है।

इतना जान लेने के बाद दो-ढाई साल तक के बच्चे के लिये खिलौनों का चुनाव करने में कठिनाई नहीं होगी।

पहले दो-तीन महीनों में बालक को खिलौनों की आवश्यकता नहीं होती। इस समय तो केवल उसके पालने में रंगीन और सुन्दर बजने वाले लटकन आदि लगवा देने चाहिये।

## एक साल के बच्चे के खिलौने

घुटनों से चलने के बाद तक बालक चमकीले और रंगीन मोटे मणियों की माला, बटनों की लड़ी, तालियों का गुच्छा, लकड़ी के चम्मच, झुनझुने,

बजने वाली चीजें, रबड़ और लकड़ी के रंगीन व सुन्दर खिलौने तथा रबड़ की गेंदें बहुत पसन्द करता है। इस समय बालक हर चीज को मुँह में डाल कर चूसने लगता है, इसलिये सब खिलौनों को धोकर साफ कर देना चाहिये। लोरियाँ भी बालक को खूब सुनानी चाहिये। माँ की मीठी लोरियाँ बालक को बहुत प्रभावित करती हैं।

## एक साल से बड़े बच्चे के खिलौने

एक साल के बाद बालक को ढँकने और उघाड़ने, खोलने और बन्द करने में बड़ा मजा आता है। ढक्कन लगाना और उघाड़ना बालक की खास प्रवृत्ति है। दियासलाई की खाली डिब्बियों को वह बार-बार खोलता और बन्द करता है। चढ़ने और फिसलने का भी बालक को बड़ा शौक होता है। इसलिये बालक को ऐसे टोकरे देने चाहिये जिनमें वह दुबक सके और निकल सके।

डेढ़ साल का हो जाने पर बालक खूब चलने-फिरने लगता है। इस समय बालक कुर्सी या स्टूल जो कुछ भी सामने आता है, उसे ही खिलौना बना कर कितनी ही देर तक खेलता रहता है। उसे इधर-उधर धकेलता है, कभी चढ़ता है और कभी उतरता है। इस समय गत्ते पर बनी हुई तस्वीरों की किताबें भी देनी चाहिये। पन्ने उलटना बालक का बड़ा प्रिय खेल है। उँगलियों पर काबू पा जाने पर असली चित्रों की किताबें देनी चाहिये और पन्ने उलटना बता देना चाहिये। इससे बालक को बड़ा लाभ होता है। पन्ने उलटते-उलटते वह चित्रों में दिलचस्पी लेने लगता है, नई-नई किताबों की माँग करता है और चित्रों के बारे में पूछने लगता है।

इस समय बालक को लकड़ी की ईंटें भी देनी चाहिये। ईंटों से बालक तरह-तरह की इमारतें और शक्लें बनाता है और बड़ा खुश होता है। बालक की तोड़-फोड़ की आदत छुड़ाने के लिये ईंटें बहुत ही

उपयोगी हैं। तोड़-फोड़ बालक उस वक्त करता है, जब उसे कुछ करने को नहीं मिलता। पानी और मिट्टी बालक के सबसे प्रिय खेल-खिलौने हैं। इनसे वह घंटों खेलता रहता है। इनसे खेलने के सुन्दर और उपयोगी तरीके बता देने चाहिये।

## दो वर्ष के बच्चे के लिए खेल के साधन

दो वर्ष के बालक के लिये डा० माण्टीसोरी की चार गट्टा-पेटियाँ, मिनारें आदि कितने ही साधन बालक के शारीरिक और मानसिक विकास के लिये बेजोड़ हैं। ये चीजें घर पर भी बनवाई जा सकती हैं और बाहर* से बनी बनाई भी मँगवा सकते हैं।

दो-ढाई साल के बाद बालक का मन खिलौनों से उकता जाता है, वह अब काम चाहता है, प्रवृत्ति चाहता है, असली खेल चाहता है, इसलिये इस समय बच्चे के लिये असली खेलों का और प्रवृत्तियों का प्रबन्ध होना चाहिये।

———

* डा० माण्टीसोरी के साधनों के मिलने का पता :—
जेचन्द तलकशी एण्ड सन्स, एम्पायर बिल्डिंग
हॉर्नबी रोड; फोर्ट, बम्बई।

# बालक की शिक्षा

## शिक्षा पालने में ही शुरू हो जाती है

प्रायः लोग ऐसा मानते हैं कि पाँच-छः वर्ष का बालक लिख-पढ़ नहीं सकता। यह समय खेल-कूद, खाने-पीने का है, पढ़ने-लिखने का नहीं, क्योंकि पढ़ने-लिखने से बालक कमजोर हो जाते हैं। लेकिन यह मान्यता बिल्कुल गलत और झूठी है। इसमें रत्ती भर भी सचाई नहीं है। जन्म से छः साल तक का समय बालक की शिक्षा और विकास के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस समय बालक जितना विकास कर सकता है, उतना विकास वह सारी उम्र में भी नहीं कर सकता। निस्सन्देह बालक की शिक्षा पालने में ही शुरू हो जाती है। बालक की सबसे पहली शिक्षा माता की प्रेमभरी लोरी, प्रेमभरी निगाह और प्रेमभरा लालन-पालन है। माता ही सबसे पहला गुरु है। बालक के कोमल हृदय, मन और शरीर पर माता की शिक्षा का जो गहरा प्रभाव पड़ता है, उसे कोई भी शक्ति मिटा नहीं सकती। वही बालक होनहार होता है, जिसकी शिक्षा पालने में ही आरम्भ हो जाती है। इसीलिये यह कहावत है—"होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" आज तक दुनिया में जितने भी महापुरुष और वीर हुए हैं, वे इसी पालने की शिक्षा की देन हैं।

## शिक्षा का सही मतलब

शिक्षा का अर्थ केवल गिनती-पहाड़े रट लेना या अक्षर-ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है। शिक्षा का असली मकसद है—जीवन-निर्माण, बालक में छिपी हुई शक्तियों और व्यक्तित्व का विकास, जिससे वह अपनी समस्याएँ खुदबखुद हल कर सके। इसलिये सबसे पहले बालक को अपने

सब दैनिक काम समय पर करवाने की आदत डलवानी चाहिये। आज के बालक का जीवन बिल्कुल अनियमित है। न वह समय पर सोता है, न जागता है, न समय पर भोजन करता है, न समय पर शौच जाता है, और न ही समय पर स्नान करता है। यही हाल सफाई, स्वच्छता और व्यवस्था का है। उसकी चीजें इधर-उधर बिखरी पड़ी रहती हैं। कपड़े गन्दे रहते हैं। नाक, आँख, दाँत आदि का भी यही हाल है। समय पर काम न करने के कारण बालक जीवनभर दुखी और परेशान रहता है। बड़ा होकर अगर वह समय पर काम करने की कोशिश भी करता है तो असफल रहता है; क्योंकि बाल्यावस्था में समय पर काम करना उसे सिखाया ही नहीं गया है। इसके लिये माता-पिता जिम्मेदार हैं। वे न समय पर काम करते हैं और न बालक को समय पर काम करना सिखाते हैं। अन्य आदतों की तरह समय पर काम करने की आदत भी बचपन में ही पड़ सकती है। यही समय उसके लिये उपयुक्त है। इसलिये समय पर काम करने की आदत बचपन में ही डलवानी चाहिये। लेकिन समय पर काम कराते समय बालक की प्रकृति तथा अवस्था का ध्यान रखना बड़ा जरूरी है। जड़वत् नियम-पालन कराने से लाभ के बजाय हानि बहुत अधिक होती है। किसी खास कारण से किसी दिन बच्चा अपना कोई काम नियत समय पर न कर सके तो उसे इसके लिये विवश हर्गिज न करना चाहिये। समय पर काम करने के अलावा बालक को अपने सब काम अपने आप ही करने की सहूलियत और आजादी देनी चाहिये।

## प्रेमपूर्वक मिलना और खेलना सच्ची शिक्षा है

बालक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला रह नहीं सकता। छः माह का हो जाने पर ही बालक साथियों की आवश्यकता महसूस करने लगता है। अगर उसे साथी नहीं मिलते तो वह बीमार पड़ जाता है और कभी-कभी तो मृत्यु तक हो जाती है। मानसिक भूख को बालक सहन नहीं कर

सकता। इसलिये माता को चाहिये कि आस-पास के बालकों को अपने घर बुलाएँ और सब को साथ मिल कर खेलने दें। कुछ माता-पिता अपने ही बालक को प्यार करते हैं, दूसरों के बालक को नहीं। वे अपने बच्चों को अलग-अलग रखते हैं, किसी से मिलने-जुलने नहीं देते। इसका नतीजा यह होता है कि बालक में दूसरों के प्रति घृणा, डाह तथा ईर्ष्या के भाव पैदा हो जाते हैं। वह जन्मभर स्वार्थी, अशान्त और कठोर बना रहता है। दूसरों के दुःख-सुख का वह जरा भी परवाह नहीं करता। इसलिये बालक को दूसरे बच्चों के साथ मिलने और खेलने का मौका मिलना चाहिये। बच्चों का प्रेम से मिलना और प्रेम से खेलना ही बहुत बड़ी शिक्षा है। इससे हार्दिक, सामाजिक और नैतिक शक्तियों का विकास होता है और बच्चे सच्चे नागरिक बनते हैं। खेलते-खेलते जब कभी बालक लड़-भिड़ पड़ें तो बिना किसी की झूठी तरफदारी के उन्हें समझा देना चाहिये।

## इन्द्रियों की शिक्षा

ज्ञानेन्द्रियों के उपयोग से ही शिक्षा का आरम्भ होता है। इसलिये बालक को अपनी ज्ञानेन्द्रियों को स्वयं काम में लाने का मौका मिलना चाहिये। इससे उसके ज्ञान में वृद्धि होगी, उसका विकास होगा और क्रिया-शक्ति बढ़ेगी। इन्द्रिय-विकास का काम शुरू से ही होना चाहिये। तीन माह की उम्र में बालक को छत पर या बाहर ले जा कर घर की चीजें, फूल, वृक्ष तथा अन्य पदार्थों को देखने का अवसर देना चाहिये। टनटन, पों-पों, भों-भों, चों-चों, म्याऊँ-म्याऊँ, काँय-काँय आदि आवाजों को सुनने देना चाहिये। लेकिन एक साथ बहुत-सी चीजें दिखाना, बहुत-सी आवाजें सुनाना, अधिक हँसाना ठीक नहीं।

## रंगों का ज्ञान

रंग का ज्ञान कराने के लिये उसके पालने के चारों ओर रंगदार गोले, फीते या शीशे की कलनें लटका दें। जब बालक लेटा हो तो रंगों के नाम

से लेकर इनको हिलाएँ और बजाएँ। बार-बार नित्य ऐसा करने से बालक के मन पर इन रंगों के नाम व इनकी पहिचान अंकित हो जायगी। जब बालक खेलने लायक हो जाय तो रंगीन गेंदों, कुकड़ियों या गोलियों से उसके साथ खेला करें। इससे रंगों के ज्ञान के साथ-साथ उनका हल्का या गहरापन भी उसकी समझ में आ जायगा। जब बालक चलने लगे तो उँगली पकड़ कर उसे कमरे की सारी चीजों के नाम व काम बता दें। इसी तरह बाजार ले जाकर सारी वस्तुएँ दिखा दें। किसी बड़े शहर में जायँ तो वहाँ के ऐतिहासिक स्थान तथा मिल और कारखाने आदि अवश्य दिखाएँ। वहाँ की सारी वस्तुएँ, कलपुर्जे और उनके नाम आदि बताएँ, बाल-शिक्षा का इससे अच्छा साधन दूसरा हो नहीं सकता।

सुनने की इन्द्रिय का विकास करने के लिये प्रेमभरी राग-रागनियाँ सुनाया करें। बालक को जो गाने अच्छे लगें वही सुनाया करें। उसके गाने भी सुना करें। यही संगीत शिक्षा की पूर्ण तैयारी है। भूल कर भी बालक के कान में भयङ्कर आवाज न करें और न सुनने का मौका दें। बालक के साथ बातचीत करते समय उदाहरण का ख्याल रखें। तोतली बोली बच्चे को कभी न सिखायें। चीजों के अशुद्ध नाम न बतायें। पानी को "पापा" या "मम्मा" न कहें, पानी ही कहें और कहलायें।

## स्पर्शेन्द्रिय का ज्ञान

स्पर्श-इन्द्रिय का विकास करने के लिये बालक के हाथ में रुई, मखमल, रबड़ इत्यादि देकर कहें कि इन्हें दबाकर देखो कितनी नर्म हैं। फिर मिट्टी के खिलौने आदि देकर कहें कि देखो ये कितने सख्त हैं। इसी प्रकार ठंडे व गर्म का ज्ञान करा दें। छूकर वस्तुओं के ज्ञान का खेल भी खेला जा सकता है। बालक की आँख बन्द कर दें, फिर कोई चीज लें और उसके हाथ में देकर पूछें—यह क्या है?

## रसेन्द्रिय का विकास

चखने का ज्ञान कराने के लिये खट्टी, मीठी तथा नमकीन चीजें बालक को चखायें और साथ ही उस चीज का नाम और स्वाद भी बता दें। बहुत तेज चीज जैसे लाल मिर्च आदि कभी उसके मुँह में न दें।

## दर्शनेन्द्रिय व स्मरण-शक्ति का विकास

निगाह व स्मरण-शक्ति को बढ़ाने के लिये 'क्या देखा' का खेल खेलना बहुत लाभदायक है। बाजार या बाग में से लौटने पर पूछें, 'क्या-क्या देखा ?' बालक बड़ी खुशी से चीजों के नाम गिनाने लगेगा। बालक लिखना जानता हो तो लिखवाएँ। कभी बालक से पूछिये कि उस दिन हम अपने मित्र के यहाँ गये थे या दुकान पर सामान खरीदने गये थे, तुम्हें याद है न ? आज फिर वहीं चलना है, तुम चलोगे ?

कभी एक पटरे या छोटी मेज पर दस-पन्द्रह चीजें रख दें और कपड़े से ढँक दें। सामने बालक को बिठा दें, फिर एक-दो मिनट के लिये कपड़ा हटा दें और बालक से उन चीजों को देखने के लिये कहें और बाद में उन चीजों पर कपड़ा डाल कर पूछें—'क्या-क्या देखा ?'

## इन्द्रिय-शिक्षा का महत्त्व

इन्द्रियों के विकास के लिये डा० मॉण्टीसोरी के वैज्ञानिक ढंग से बने हुए साधन कमाल के हैं। जो माता-पिता खरीद सकें वे उन्हें बालकों के लिए जरूर खरीद दें। इन्द्रियों की शिक्षा को आप साधारण न समझें। इसी शिक्षा पर बौद्धिक शिक्षा का दारमदार है। वही बालक बड़े बन कर आविष्कारक, वैज्ञानिक, चित्रकार, संगीतज्ञ, लेखक आदि बनते हैं, जिन्हें बचपन में इन्द्रिय-विकास का भली प्रकार अवसर मिलता है। इसलिये बालक को देखने, सुनने, सूँघने, छूने और चखने का मौका दें। इस काम के करने में उसे रोकें नहीं, डाँटें नहीं।

## गणित की शिक्षा

गणित भी बालक खेल-खेल में सीख सकता है। साधनों द्वारा गणित सीखने में बालक को बड़ा ही मजा आता है। स्कूल के बालकों की तरह घर या बाल-मन्दिर में पढ़ने वाले बालक गणित से घबराते और भागते नहीं। गिनती सिखाने के लिये बालक को एक ओर खड़ा कर दें और दूसरी ओर खुद खड़े हो जायँ। अब एक गेंद लेकर बालक की तरफ फेंकें और कहें 'एक' और जब गेंद लौट कर आए तो कहें 'दो'। इस प्रकार दस तक गिनती सिखा दें। इसके बाद सौ तक आगे बढ़ा सकते हैं। मोतियों, गोलियों और दियासलाइयों से भी गिनती सिखा सकते हैं। दहाई और सैकड़ा आदि का ज्ञान देने के लिये दियासलाइयों का दस-दस, सौ-सौ और हजार-हजार आदि का बंडल बना लें। मोतियों से भी यह काम लिया जा सकता है। गिनती आने पर जोड़, बाकी, गुणा और भाग बड़ी आसानी से खेल के द्वारा सिखाये जा सकते हैं। खेलों के नाम पहले से ही सोच लेने चाहिये जैसे गिनती का खेल, जोड़ का खेल आदि। पहाड़े बालक को कभी न रटाएँ। अभ्यास करते-करते और खेल खेलते-खेलते बालक को आसानी से पहाड़े याद हो जायँगे। इनके खेल बना लें या बने बनाये खरीद लें। अङ्कों, जोड़ और बाकी आदि गणित के सब नियमों का ज्ञान कराने के लिये डा० मॉन्टीसोरी के गणित के साधन बड़े ही उपयोगी हैं। इनके द्वारा गणित समझने में बालक को जरा भी देर नहीं लगती और कुछ कष्ट भी नहीं होता।

रेखागणित का ज्ञान भी साधनों द्वारा बड़ी सुगमता से कराया जा सकता है।

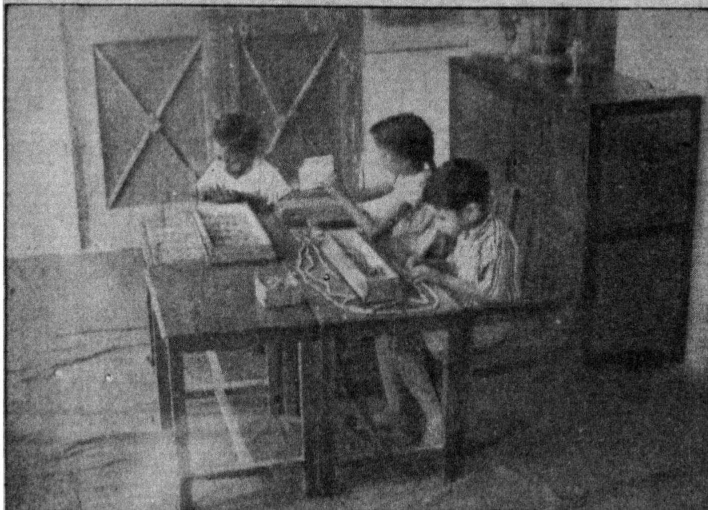
## भाषा की शिक्षा

वातावरण से बालक भाषा बड़ी सरलता से सीख जाता है। आप सदा बालक के साथ शुद्ध भाषा में बातचीत करें, रोचक कहानियाँ सुनायें।

बालक जो कुछ सुनाना चाहे उसे चाव से सुनें। कभी-कभी बालक को अपने मित्रों के यहाँ ले जायें और उसे खूब सुनने का मौका दें। इस प्रकार पाँच वर्ष तक भाषा का बालक को पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इस समय बालक हिन्दी, उर्दू आदि भाषाएँ आसानी से सीख सकता है। अक्षर-ज्ञान कराने के लिये हिन्दी अक्षरों के बड़े-बड़े चार्ट बालक के खेलने के कमरे में लगा दें। बालक जब पूछे तो फौरन अक्षरों के नाम बता दें। दूसरा साधन यह है कि लकड़ी के अक्षरों का एक बक्स मँगवाएँ और बालक के साथ उससे खेलें। अक्षरों की चौसर व खेल भी आते हैं। उनसे भी काम ले सकते हैं। रेगमाल के कटे हुए अक्षर इस काम के लिये बहुत ही बढ़िया हैं। पहले आप एक अक्षर लें और धीरे-धीरे उस पर बड़ी सावधानी से उँगली फेरें और उसका नाम लें। और फिर बालक को क्रिया करने दें। एक बार में दो ऐसे अक्षर लेने चाहिये जिनके मिलाने से कोई शब्द बन जाय ; जैसे 'न' और 'ल', 'प' और 'र' आदि। इसी प्रकार दो-दो अक्षर लेकर सारे अक्षर सिखा दें। जब बालक सब अक्षर सीख जाय तो आँख बन्द करके खेल खिलाएँ। सिलसिलेवार अक्षर न रटाएँ जैसा कि आम तौर पर स्कूलों में होता है।

अक्षरों की पहचान आने के बाद शब्दों व नामों के चार्ट, किताबें व खेल लेकर खिलाया करें। कमरे की पहली दीवार पर अक्षर व शब्दों के चार्ट, दूसरी पर नामों के चार्ट, तीसरी पर गिनती के चार्ट और चौथी पर कुछ वाक्यों के चार्ट लगा दें। इस प्रकार जिधर बालक की निगाह जाय और वह कुछ पूछे तो आप उसी समय बताएँ।

अक्षरों का खेल भी खेलें। एक गेंद पर 'क' लिखें और दूसरी पर 'ब'। बालक आपकी ओर गेंद फेंके और आप बालक की ओर। इन गेंदों के नाम 'क' और 'ब' बताते जायँ। इस प्रकार खेल-खेल में सब अक्षर याद करा दें।



बच्चे गणित के साधनों से काम कर रहे हैं



बालक ग्लोब का निरीक्षण कर रहा है

अक्षरों के आ जाने के बाद शब्दों और वाक्यों के खेल खेलें। छोटे-छोटे गत्ते के टुकड़ों पर बहुत से शब्द लिख लें। सबको मिला कर रखें। फिर बालक से कहें—'देखो राम का खेल खेलते हैं। इनमें से राम को ढूँढ़ो।' बालक बड़े चाव से राम को ढूँढ़ने लग जायगा। इस प्रकार शब्द बदलते जायँ। फिर दो-दो चार-चार शब्द तलाश कराएँ और उन्हें बराबर लगवा कर वाक्य बनवाएँ जैसे—'राम गाना गाता है'। शब्द बनाने का एक और भी तरीका है। गत्ते के टुकड़ों पर सुन्दर-सुन्दर अक्षरों के कई सेट लिख लें। फिर बालक से कहें 'आओ आज शब्दों का खेल खेलें'। पहला पत्ता बालक डाले। मान लें कि वह 'अ' डालता है, तो आप उसके सामने 'ब' डाल कर पूछें कि यह क्या है? जब बालक ठीक-ठीक बता दे तो उसी शब्द को जल्दी से बुलाएँ। बालक के मुँह से निकलेगा 'अब'।

इसी प्रकार वाक्यों के भी बहुत से खेल बन सकते हैं। वाक्यों से छोटी-छोटी कहानियाँ भी बन सकती हैं। इसके लिये बहुत सरल कहानियों की कोई पुस्तक लाएँ, उसके सफे अलग-अलग कर लें। फिर उसकी कहानियाँ और उनके वाक्य अलग-अलग काट कर गत्तों पर चिपका लें। इस प्रकार के ताशों से खेल-खेल में ही बालक छोटी-छोटी कहानियाँ सीख सकता है।

इतने खेल खेलने पर बालक को पढ़ने में जरा भी दिक्कत न आयेगी। बालक को छोटी-छोटी रोचक पुस्तकें दें। बाल-मासिक पत्र भी दें। पढ़ना आने पर बालक खूब मन लगा कर पढ़ते हैं, एक कहानी को बार-बार पढ़ते हैं। दूसरों को पढ़ कर सुनाते हैं। दैनिक अखबार सामने आ जाता है तो उसे भी उठा कर पढ़ने की कोशिश करते हैं।

## लेखन-शिक्षा

लिखना तो बालक पढ़ने से भी पहले बिना सिखाये सीख जाते हैं। बालक को लकीरें खींचने की आदत होती है। जो कुछ उसके हाथ में आता

है, उसी पर लकीरें खींचने लगता है। इसलिये बालक जब कोयला लेकर लकीरें खींचे तब उसे रोकें नहीं। उसका हाथ अपने हाथ में पकड़ कर उससे उसका नाम लिखवाएँ। अपना नाम लिख लेने पर बालक बड़ा खुश होगा। वह सबको दिखाता फिरेगा। उछल-उछल कर अपनी खुशी प्रगट करेगा। इस प्रकार लकीरें खींचते-खींचते बालक अक्षर बनाने लगेगा। बालक के लिये जमीन पर साफ रेत बिछा दें जिससे वह उँगली से या तिनके से अक्षर बनाया करे। अक्षरों का एक चार्ट भी टाँग दें, जिसे देख कर बालक नकल करेगा। बालक में नकल करने की आदत होती है। वह जो कुछ देखता है उसकी नकल करता है। लेखन की पूर्व तैयारी के लिये डा० मान्टीसोरी की भौमितिक आकृतियाँ बड़े ही काम की हैं। इनमें लकीरें खींचते-खींचते बच्चा अपने आप लिखना सीख जाता है।

## पत्र-लेखन

लिखना आ जाने के बाद बच्चा पत्र लिखना भी सीख जाता है। बच्चे से कहें कि अपने भाई के नाम पत्र लिखे, जो कालेज में पढ़ता है। बालक को कागज, पेन्सिल आदि आवश्यक चीजें दे दें। पत्र लिख कर वह बड़ा खुश होगा। पत्र लेकर आप कहें—'वाह ! यह तो बहुत अच्छा लिखा है'। देखो, यहाँ पता लिखते हैं, यहाँ तारीख, यहाँ सरनामा और यहाँ अपना नाम लिखते हैं। बालक बड़ी खुशी से वैसे ही लिखने की कोशिश करेगा। फिर भी कोई गलती रह जाय तो परवाह न करें। दोबारा ठीक कर लेगा। आये हुए पत्र उससे पढ़वायें और उनका जवाब भी लिखवायें। लिखते-लिखते बालक को अच्छा अभ्यास हो जायगा। बालक की गलती निकालने की गलती कभी न करें, बल्कि ऐसा प्रयत्न करें, ऐसा रास्ता निकालें कि बालक अपनी गलती खुद ही ठीक कर ले। नमूने के पत्र लिख कर उसके कमरे में टाँग दें। देखते-देखते पत्र सम्बन्धी बहुत-सी बातें बच्चा सीख जायगा।

## भूगोल की शिक्षा

भूगोल सिखाने के लिये घर के किसी कोने में साफ मिट्टी डलवायें। फिर बच्चे से कहें—आज पहाड़ों का खेल खेलेंगे। बच्चा खुशी-खुशी पहाड़ बनायेगा। दूसरे दिन नदियों का खेल खेलें। खेलों को खूब रोचक बनाएँ और खुद भी उनमें भाग लें। पहाड़ों का खेल हो तो उन पर पौधे, नाले, बर्फ सब कुछ दिखायें, पहाड़ी जानवर भी दिखायें, कहीं-कहीं पत्थर और मिट्टी लगा दें, छोटे पौधे और घास लगा दें। कहीं पशु-पक्षी बिठा दें। पानी के नाले बहा दें। भूगोल सिखाने का एक और भी तरीका है। सब देशों के छोटे-छोटे झण्डे मँगा लें, उनको बालक को समझा दें—यह भारत का झण्डा है—यह इंगलैण्ड का झण्डा है, आदि। फिर बालक से कोई झण्डा निकलवायें और उसका हाल बता दें। चित्र तथा दूसरे नक्शे भी दिखायें। बारिश के दिनों में बालक को नदी-नाले दिखाया करें। इस तरह बालक को भूगोल का बहुत-सा ज्ञान हो जायगा। खेल-खेल में दिशाओं का ज्ञान भी करा सकते हैं।

## प्रकृति का ज्ञान

बालक के विचार विशाल बनाने के लिये उसे प्रकृति की सैर अवश्य करावें। कभी नदियों के किनारे घुमाने ले जायें, कभी जंगलों में, पहाड़ों के शिखर पर और कभी चिड़ियाघर ले जाया करें। पशु-पक्षियों, फूल-पत्तों से बालक को शुरू से ही बड़ा प्रेम होता है। अतः ऐसी चीजें बालक के सामने अवश्य आने दें। हो सके तो घर में भी इनका प्रबन्ध कर दें। इससे आप बालक को बहुत-सी बातें सिखा सकते हैं। बालक फूल तोड़े तो बतायें कि पौधों पर लगे फूल कितने सुहावने लगते हैं। तोड़ने से फूल जल्दी मुरझा जाते हैं। फूल तोड़ने से फल नहीं लग सकते। फूलों से ही फल लगते हैं। बालक कच्चा फल तोड़े तो समझा दें कि

कच्चा फल तोड़ने से फल खराब हो जाता है। इसी प्रकार बालक अगर पशु-पक्षियों को मारे या सताये तो कहें कि ऐसा करना ठीक नहीं। हमारी तरह इन्हें भी कष्ट होता है। इस प्रकार जब मौका मिले पशु-पक्षी, वृक्ष-पौधे आदि के बारे में बताते रहें। इससे बालक में प्रेम और सहानुभूति पैदा होगी, दूसरों को सताने की आदत उसमें नहीं पड़ेगी। यही सच्ची शिक्षा है। हृदय की शिक्षा इसे ही कहते हैं जिसका हमारे देश में सर्वथा अभाव है।

पशु-पक्षी और पौधों के अलावा बालकों को सूरज, चाँद, तारे, बादल और बिजली के बारे में भी बताया करें। बालक इन सब बातों में खूब रस लेते हैं और तरह-तरह के सवाल करते हैं। उनके सब सवालों का जवाब दें। जवाब न आये तो किसी से पूछ कर बतायें।

## चित्रकला की शिक्षा

चित्र खींचना बालक की स्वाभाविक वृत्ति है। चित्र द्वारा बालक अपने आन्तरिक भावों को प्रकट करता है। बालक की इच्छानुसार उसे चित्र बनाने दें। उसके काम में आप अपनी टाँग न अड़ायें, गलतियाँ न निकालें। गलती निकालने के बजाय असली स्थिति का अवलोकन करा दें। असली चित्रकला अन्दर से पैदा होती है, ऊपर से लादी नहीं जा सकती। बालक को प्रकृति का परिचय कराएँ, अजायबघर और चिड़ियाघर की सैर करायें। घर को सुन्दर चित्रों से सजा कर रखें। अपने अनुभव से बालक खुद ही चित्र बनायेगा। आप कुछ न कहें। आप तो दूर बैठे उसे देखते रहें। चित्र बनाने के लिये कुछ कागज, कुछ रंगीन पेन्सिलें और हो सके तो भौमितिक आकृतियाँ दे दें। बालक जब अपना चित्र आपको दिखाये तो उसे निराश न करें, बल्कि कहें—'वाह खूब चित्र बनाया! और बनाओ।' इतना प्रोत्साहन मिलने पर बालक रोजाना नये-नये चित्र बनायेगा और आपको दिखायेगा।



बालक अक्षर जमा रहा है



बालक चित्र बना रहें हैं

## स्वास्थ्य की शिक्षा

स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान कराने के लिये यह जरूरी है कि आप बालक से जो कुछ कराना चाहें उसे खुद भी करें। उपदेश से कुछ काम न बनेगा। जो कुछ सिखाना हो पहले आप उसे करें। बालक आपकी नकल करेगा। आप चाहते हैं कि बालक अपने कपड़े, अपना स्थान साफ रक्खें, फलों के छिलके इधर-उधर न डालें, जहाँ-तहाँ पेशाब न करें, तो सबसे पहले आप इन सब बातों पर अमल करें। शरीर के ज्ञान के लिये उसके प्रत्येक अंग को समझायें। पहले उँगली, अँगूठा, हाथ, पैर, आँख, नाक को लें। फिर भीतर के अंग समझाने के लिये चार्ट की सहायता लें और दिमाग, दिल, जिगर आदि बतायें। इनके काम भी बतायें। जैसे—आमाशय खाना हजम करने का काम करता है। इसमें बार-बार ऐसी चीजें नहीं डालनी चाहिये जो हजम न हों। दाँत भी आमाशय की सहायता के लिये बनाये गये हैं। अतः पहले खूब चबायें फिर निगलें, जिससे आमाशय को खाना पचाने में आसानी हो।

## अन्य विषयों की शिक्षा

इसके अलावा शासन-व्यवस्था तथा अन्य जीवनोपयोगी विषय खेलों, साधनों, और चित्रों के द्वारा बालक के सामने रक्खे जा सकते हैं। लेकिन यह तभी हो सकता है जब आप बालक के प्रति अपने कर्तव्य को महसूस करते हों, बाल-स्वभाव को खूब समझते हों, बाल-विकास के नियमों को जानते हों, बालकों से घुल-मिल कर रहते हों, सब बालकों को समान भाव से देखते हों, किसी की तारीफ और किसी की बुराई न करते हों, जैसा बालकों से कहते हों वैसा खुद भी करते हों। अगर यह बात नहीं है तो बालक आपसे प्रभावित न होंगे। वे आपसे दूर भागेंगे। आप उनकी शिक्षा व विकास में कुछ भी सहायता न कर सकेंगे। इसलिये

बालक की शिक्षा और विकास का सवाल आपकी शिक्षा और विकास का सवाल है।

## बालक में ग्रहण करने की विलक्षण शक्ति

बाल्यकाल ग्रहण करने का समय है। इस समय ज्ञान के लिये बालक भूखा रहता है। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर बोरिस सिडिस के लड़के ने छः महीने की आयु में तमाम अँग्रेजी अक्षर सीख लिये थे। दो साल की आयु में वह पाठ्य पुस्तकें पढ़ सकता था। चार साल की आयु में वह टाइपराइटर पर कहानियाँ टाइप कर सकता था। पाँच वर्ष की आयु में उसने एक पुस्तक लिखी। निगाह मारते ही वह पृष्ठ को पढ़ जाता था। और भी कितने ही आचर्श्यजनक काम वह बालक कर सकता था। अमेरिका के घर-घर में उसका नाम प्रसिद्ध था। माताएँ उसकी बुद्धि के चमत्कारों को देख कर और सुन कर हैरत में पड़ जाती थीं। कहने का मतलब यह है कि बालक की शक्तियों का अन्दाजा लगाना कठिन ही नहीं, असम्भव है और इस पर मजा यह कि बालक जो कुछ करता है वह अपने ही प्रयत्न से करता है, अपने ही प्रयत्न से सीखता है। यह कहना कि बालक को कोई सिखाता है, या पढ़ाता है उसका अपमान करना है।

## बालक की रुचि का ख्याल रखिये

बालक स्वयं प्रयत्नशील है, स्वयं शिक्षण-प्रिय है, स्वयं प्रकृति-शील है। बालक काम से जी उस समय चुराता है जब आप अपना काम उस पर लादते हैं। इसलिये सदा बालक की रुचि-अरुचि का ख्याल रक्खें। अगर बालक चित्रकला में दिलचस्पी रखता है तो आप उसे संस्कृत पढ़ने के लिए हरगिज विवश न करें। अगर ऐसा करेंगे तो आप में और बालक में अनबन हुए बिना न रहेगी। वह सदा आपसे बेजार रहने लगेगा। उसकी शक्तियाँ विकृत हो जायेंगी। इसलिए अपनी रुचि बालक पर लादकर उसको अपना शत्रु न बनायें।

# एक चेतावनी

बालक की शक्तियों का दुरुपयोग न करें। उससे उतना ही काम लें जितना कि वह खुशी-खुशी कर सके। भय या लालच दिखाकर आवश्यकता से अधिक काम उससे हरगिज न लें। उसे अपनी इच्छानुसार चलने दें। जब काम करने में उसका जी न हो, तो उसे कभी मजबूर न करें। आप तो काम करने के साधन जुटा दें और पूरी-पूरी आजादी से उसे अपना विकास अपने आप करने दें। बालक आप से कुछ नहीं चाहता। केवल सुंदर और स्वस्थ वातावरण चाहता है, और चाहता है आवश्यकता पड़ने पर आपकी थोड़ी-सी सहायता। बस, इतना कर दें और फिर बालक के चमत्कार देखें।

कितने ही माता-पिता बालक की प्रकृतिदत्त शक्तियों का इतना दुरुपयोग करते हैं कि वे रात-दिन बालक को पढ़ा-पढ़ा कर उसका कचूमर निकाल देते हैं। वे उसे न घूमने-फिरने देते हैं, न खेलने-कूदने देते हैं और न उसे अपनी इच्छा के अनुसार कोई काम करने देते हैं। उनकी यह इच्छा रहती है कि उनका लड़का जल्दी से जल्दी परीक्षाएँ पास करके उनके लिए रुपया कमाने लगे और उनका नाम दुनिया में चमकाए। ऐसा करना बालक के साथ घोर अन्याय और अत्याचार करना है। इसका नतीजा बहुत बुरा होता है। बड़ा होकर वह किसी भी काम का नहीं रहता। उसका सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है।

———

# कामवृत्ति और बालक

## कामवृत्ति का महत्त्व

कामवृत्ति और सभी मनोवेगों से बलवान, उग्र तथा महत्त्वपूर्ण वृत्ति है। यही संसार की क्रियाशीलता की प्रेरक और मूलप्रवर्तिका है। यही जादू का डण्डा फेरकर सृष्टि के चेतन और अचेतन तत्वों को एक सूत्र में गूँथ देती है। प्रेम और घृणा, आसक्ति और विरक्ति, प्रवृत्ति और उदासीनता आदि सब इसी से अपनी खुराक पाते हैं। यह वह प्रेरक शक्ति है, जिसे कुचला नहीं जा सकता। यह वह प्रवाह है जिसे रोका नहीं जा सकता। सदियों से इस वृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकने के असंख्य प्रयत्न किये जाते रहे हैं, किन्तु सब व्यर्थ। धर्म और नीति के सभी उपदेश व प्रचार इस विषय में बेकार साबित हुए हैं। कामवृत्ति का प्रवाह स्वाभाविक है। इसे अस्वाभाविक रीति से कुचलने की कोशिश करने पर यह और भी विकराल रूप धारण कर लेती है। इसलिए इस विषय में थोड़े धैर्य, उदारता और समझ से काम लेना चाहिए।

## कामवृत्ति का सदुपयोग

इसकी दिशा बदली जा सकती है, और उससे अधिकाधिक काम लिया जा सकता है। 'काम' का सदुपयोग मानव को विकास की चरम सीमा तक पहुँचा देता है। साहित्य-प्रेम, कला-प्रेम, विज्ञान-प्रेम, देश-प्रेम, विश्व-प्रेम आदि इसी वृत्ति के शुद्धतम और श्रेष्ठतम रूप हैं। लेकिन साथ ही इस वृत्ति का दुरुपयोग समाज को रसातल में धकेल सकता है। सम्भवतः इसके दुरुपयोग-जन्य अकल्याण को दृष्टि में रख कर ही मानव-समाज के हितैषी इसका विरोध करते हों, किन्तु इससे 'काम' की उपयोगिता किसी

भी प्रकार कम नहीं हो सकती। अविकसित और अपरिष्कृत मनोवृत्तियाँ मनुष्य को राक्षस बना सकती हैं, इसमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं। आवश्यकता केवल उनके सदुपयोग की है।

## कामवृत्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती

'काम' का मनुष्य के साथ गहरा और अटूट सम्बन्ध है। यह मनुष्य की नस-नस में समाया और रमा हुआ है। 'काम' मनुष्य की स्वाभाविक और प्राकृतिक आवश्यकता है, खुराक है। 'काम' के बिना दुनिया का कोई भी काम संभव नहीं। सचमुच, 'काम' ही सृष्टि का आधार है। 'काम' ही सृष्टि का सञ्चालन करता है। मनोविश्लेषण के प्रवर्तक फ्रायड ने ठीक ही कहा है कि "मनुष्य की प्रत्येक क्रिया में काम-भावना विद्यमान रहती है।" इस वृत्ति के बिना किसी भी काम में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसके बिना मनुष्य अपाहिज और अपंग है। इसीलिए इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसकी उपेक्षा करना जीवन की उपेक्षा करना है।

## कामवृत्ति से घृणा व दमन का कुपरिणाम

लेकिन हमने तो 'कामवृत्ति' को सदा पाप और घृणा की ही दृष्टि से देखना सीखा है। 'काम' का नाम सुनते ही हमारे क्रोध का पारा एकदम चढ़ जाता है। कामवृत्ति को हेय समझने का एक सबसे भयंकर दुष्परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य शरीर से घृणा करना सीख गया है। इसे दुर्गुणों की खान समझने लग गया है। वह रात-दिन इसे कोसता रहता है। आठों पहर मृत्यु की कामना करता रहता है। ऐसा मनुष्य अपना, समाज का, देश का या विश्व का क्या हित कर सकता है? उसका जीना या न जीना बराबर है। शरीर से घृणा करने के कारण ही हमारे देश की आज यह दुर्दशा हो गई है। कामवृत्ति का बलात् दमन करने का दूसरा कुपरिणाम यह हुआ है कि मनुष्य को स्वाधीनतापूर्वक इस वृत्ति के

परिष्कार का अवसर नहीं मिलता और वह लुक-छिपकर उलटे-सीधे मार्ग से अपनी काम-विषयक जिज्ञासा और उत्तेजना को शान्त करने का प्रयत्न करने लगा है। यही कारण है कि हमारा आज का जीवन अनेक रोगों और विकृतियों का घर बन गया है। हमारे साहित्य, संगीत, कला-कौशल, विवाह-शादियों, सिनेमा-नाटकों, खेल-तमाशों, होटलों-धर्मशालाओं आदि सभी क्षेत्रों और स्थानों में अश्लीलता घुस गई है। सभी जगह विलासिता का दौर-दौरा है। 'काम' के प्रति संकुचित भावना ने मनुष्य को बड़ा ढोंगी बना दिया है। मैंने खूब देखा है कि जिनको बड़ा पवित्र कहा जाता है, जिनकी समाज में बड़ी प्रतिष्ठा है, वही काम-विकृति के बुरी तरह शिकार रहते हैं। धार्मिक शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की दशा तो और भी दयनीय है। उन पर इतना कठोर नियन्त्रण रखा जाता है, इतने अप्राकृतिक बन्धनों में उन्हें रखा जाता है, धर्म और ब्रह्मचर्य का इतना उपदेश उन्हें दिया जाता है कि कुछ न पूछिए। लेकिन उनकी अन्दरूनी हालत देखकर दिल दहल जाता है। जबरन और अनुचित रूप से दबाई हुई कामवृत्ति को वे न जाने किन-किन अनुचित और अप्राकृतिक उपायों द्वारा शान्त करते हैं। उन सब बातों पर प्रकाश डालने का यह स्थान नहीं है। मुझे तो यह दिखलाना है कि हमारी इस अज्ञानपूर्ण दृष्टि से बालकों के जीवन पर कितना घातक प्रभाव पड़ता है।

## कामवृत्ति का बीजारोपण

अन्य रोगों और विकृतियों की भाँति काम-विकृति की बुनियाद भी बाल्यावस्था में ही रखी जाती है। जिस दृष्टि से हम बालकों की काम-चेष्टाओं को देखते हैं और उनके सवालों का जवाब देते हैं, वह इतनी विकृत और दूषित है कि बालकों में काम-विकृति का बीजारोपण हुए बिना रह ही नहीं सकता। जब तक हम काम के वास्तविक मंगल रूप को न समझेंगे, जब तक हम अपने दकियानूसी धार्मिक, नैतिक और

सामाजिक विचारों और धारणाओं को तिलाञ्जलि न देंगे, जब तक कामवृत्ति पर हम पाप और घृणा का पर्दा डालते रहेंगे, जब तक हम बालकों की काम-विषयक जिज्ञासा को डण्डे के जोर से दबाते और कुचलते रहेंगे, जब तक हम अन्य विज्ञानों की तरह 'काम' को भी एक विज्ञान नहीं समझेंगे, तब तक काम-विकृति की बुनियाद बाल्यावस्था में पड़ती ही रहेगी।

## कामवृत्ति का आरंभ

प्रायः माता-पिता ऐसा मानते हैं कि कामवृत्ति युवावस्था में ही जाग्रत होती है, बचपन में नहीं। उनका यह विचार एकदम भ्रम-मूलक है। काम वृत्ति बालक में जन्म से ही होती है। शीलडर ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य में 'काम' "प्रथम श्वास से प्रारम्भ होता है और अन्तिम श्वास तक रहता है।" इसलिये यह आसानी से कहा जा सकता है कि बालक भी काम-वासना रखता है। अँगूठे का चूसना इस बात का सबूत हैं कि अन्यान्य भाग और होठों का लुआब भी बच्चे को वैसा ही सुख देते हैं जैसा कि जननेन्द्रिय की उत्तेजना।

## मुँह द्वारा काम-वासना की तृप्ति

सबसे पहले बालक अपनी कामवासना मुँह के द्वारा शान्त करता है। यही कारण है कि बालक के मुँह में जो चीज आती है वह उसे फौरन चूसने लगता है। ऐसा करने से उसे सुख मिलता है। इसलिये अँगूठा छुड़ाने में जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये। यह विश्वास रखना चाहिये कि तृप्ति हो जाने पर बालक आप ही अँगूठा चूसना छोड देगा। अगर अँगूठा छुड़ाने में हमने मारपीट या लालच से काम लिया तो यह आदत और भी बढ़ जायेगी और बालक बहुत बड़ा होने पर भी अँगूठा चूसता रहेगा। मोहन छः वर्ष का हो जाने पर भी

अँगूठा चूसता था। अँगूठे पर कुनीन लगाने व कसकर कपड़ा बाँध देने पर भी अँगूठा चूसना नहीं छोड़ता था। जबरदस्ती करने पर तो यहाँ तक होता है कि बालक डर के मारे अँगूठा चूसना छोड़कर हस्त-मैथुन करना शुरू कर देता है। इस तरह काम-विकृति की बुनियाद पड़ जाती है और इसके लिये माता-पिता जिम्मेदार हैं। जबरन माता के दूध छुड़ाने का भी यही नतीजा होता है।

## मल द्वारा कामवासना की तृप्ति

मुँह की तरह मलद्वार भी बच्चे की कामवासना की तृप्ति का साधन है। मल निकालने और रोकने में बच्चे को सुख का अनुभव होता है। यही कारण है कि बालक अपने मल-मूत्र को बहुत पसन्द करता है। उसे देखकर बड़ा खुश होता है। उससे खेलता है। हाथ-पाँव खराब कर लेता है, और कभी-कभी तो खा तक जाता है। मल-मूत्र को अपने शरीर की चीज होने के कारण बड़ा कीमती समझता है और उसे प्यार करता है। बालक की इन हरकतों को देखकर माता-पिता बड़े बिगड़ते हैं। लेकिन उनका बिगड़ना ठीक नहीं। अगर बालक को तंग न किया जाय तो वह खुद ही थोड़े दिनों में मल-मूत्र को छूने और उससे खेलने की आदत छोड़ देगा। अगर दबाव से काम लिया गया तो नतीजा बुरा होगा। यह आदत और भी पक्की हो जायेगी। बालक छिप कर मल-मूत्र करने लगेगा और अपनी जिज्ञासा को तृप्त करेगा। बालक को रेत-मिट्टी में खेलने देने से यह आदत छूट जाती है। मिस्टर नील ने लिखा है कि "बालक जब पहले पहल मेरे स्कूल में दाखिल होते हैं तो उनमें से कितनों को ही मल-मूत्र देखने का बड़ा शौक होता है। मैं उन्हें इस काम से कतई नहीं रोकता। उलटा मल-मूत्र के बारे में उनसे खूब दिल खोलकर बातें करता हूँ। इसका नतीजा यह होता है कि पाँच-सात दिन में दिल भर जाने पर बालक मल-मूत्र को देखना या इसके बारे में बातें करना खुद-बखुद छोड़

देते हैं।" अगर बहुत समय तक बालक इस आदत को न छोड़ें तो असली कारण का पता लगाकर बड़े धैर्य और शान्ति से यह आदत छुड़वानी चाहिये।

## जननेन्द्रिय द्वारा कामवासना की तृप्ति

मुँह और मलद्वार के बाद बालक अपनी काम वासना जननेन्द्रिय द्वारा तृप्त करता है। वह अपनी जननेन्द्रिय को छूता है और दबाता है। यह आदत प्रायः सभी बच्चों में होती है। साधारणतया इस आदत को बच्चा खुद ही छोड़ देता है। इससे डरने और घबराने की आवश्यकता नहीं है लेकिन बाल-मन को न समझने वाले माता-पिता इसे गन्दी आदत समझते हैं। इसलिये बालक जब अपनी जननेन्द्रिय को छूता है तो वे बुरी तरह उसका हाथ पकड़ कर खींच लेते हैं और साथ ही फटकार भी लगाते हैं। इससे बालक इस इन्द्रिय को खराब और घृणित समझने लगता है। इस प्रकार माता पिता का अपराधी मन बालक में जननेन्द्रिय के प्रति पाप की भावना पैदा कर देता है। कई बार ऐसा होता है कि इन्द्रिय में खुजली होने के कारण बालक उसे छेड़ता है। दूसरे अंगों की तरह अगर इस अँग को भी स्वच्छ रखा जाये तो इन्द्रिय का छेड़ना बड़ी आसानी से बन्द हो जाय। पेशाब-पाखाने के बाद बालक के इन अंगों को भली भाँति धोकर खूब अच्छी तरह पोंछ देना चाहिये। इतना करने पर भी खुजली आती रहे तो खुजली नाशक कोई दवाई लगानी चाहिए। खुजली होने से बच्चे को हस्त मैथुन की आदत पड़ जाती है। यह कसूर माता-पिता का है जो बालक के इस अंग को स्वच्छ नहीं रखते।

## जिज्ञासा वृत्ति के तृप्त न होने का दुष्परिणाम

बालक में जिज्ञासा-वृत्ति बड़ी तीव्र होती है। वह हर एक बात को जानना चाहता है। क्यों, कैसे और कहाँ का पता लगाए बिना उसे चैन

नहीं पड़ती । इसलिए बालक जब बोलने लगता है तो अपने जन्म, भाई-बहन के भेद, माता-पिता के सम्बन्ध तथा अपने गुप्त अंगों के बारे में सवाल पूछने लगता है । यह आदत प्रायः सभी बालकों में होती है । लेकिन माता-पिता का अपराधी मन उन्हें बालक के इन निर्दोष प्रश्नों का स्पष्ट और ठीक उत्तर नहीं देने देता । कितने ही सवालों को वे हँसी में उड़ा देते हैं । कितने ही सवालों का उलटा-पुलटा और गलत-सलत जवाब दे देते हैं । कितने ही माता-पिता ऐसे सवालों का जवाब डण्डे और चपत, घुड़की और डांट से देते हैं । कौन नहीं जानता कि बच्चों की पैदाइश के बारे में माता-पिता कितना अंट-संट और झूठा जबाब देते हैं । उनका जवाब आम तौर पर यही होता है कि "तुझे आसमान से ईश्वर ने भेजा है, या तेरी नानी ने पारसल में तुझे यहाँ भेजा है ।" ऐसे जवाबों से बालक की जिज्ञासा शान्त होने के बजाय और भी तीव्र हो उठती है । वह गली के लड़कों या नौकरों से इन सवालों का जवाब पूछता है । उनसे भी प्रायः अधूरे और गलत जवाब ही मिलते हैं । बालक के मन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है । वह जटिल बन जाता है । चोरी करने और झूठ बोलने लगता है । छल-कपट से काम लेने लगता है । दिन में ही स्वप्न देखने लगता है । किसी काम में उसका मन नहीं लगता । एक उदाहरण से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायगी ।

## एक लड़की का उदाहरण

पाँच-छः साल की एक लड़की थी । अच्छे और धार्मिक घराने में पैदा हुई थी । उसे चोरी करने की आदत पड़ गई । माँ को बहुत दुःख हुआ । वह उसे एक मनोविश्लेषक के पास ले गई । मनोविश्लेषक से पता चला कि लड़की चोरी करना इसलिये सीख गई थी कि उसकी माता ने बालकों के जन्म के बारे में उसके सवालों का जवाब ठीक-ठीक नहीं दिया था । वह यह कह कर लड़की को टाल दिया करती थी कि ईश्वर

बच्चों को स्वर्ग से यहाँ भेजता है। लड़की को अपने सवाल का ठीक जवाब मिलने और माता के काम-सम्बन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन होने से लड़की ने चोरी करना छोड़ दिया। छल-कपट करना और झूठ बोलना भी छूट गया और वह अपना काम मन लगाकर करने लगी।

## कामवृत्ति के प्रति गलत दृष्टिकोण का कुपरिणाम

काम वृत्ति के प्रति हमारा जो दृष्टिकोण है, उससे बालक पर बहुत बुरा असर पड़ता है। वह जीवन भर दुःखी और चिन्तित रहता है। विवाह होने के बाद भी उसकी काम-वासना मिटने नहीं पाती। डाक्टर मिलर ने लिखा है—साढ़े चार साल की लड़की ने दो बिल्लियों को काम-क्रीड़ा करते देखा। लड़की दौड़ी-दौड़ी माँ के पास गई और कहा—"माँ! माँ! बिल्ला-बिल्ली को तंग कर रहा है, आप चलकर उसे छुड़ा दें।" यह सुनते ही माँ ने नाराज होकर और कड़क कर कहा—"बैठ जाओ, अच्छी लड़कियाँ ऐसी क्रियाओं की ओर ध्यान नहीं दिया करतीं।' लड़की के अज्ञात मन* (उपचेतना) पर इस मामूली-सी घटना का इतना गहरा असर हुआ कि सत्ताइस साल बाद यही घटना लड़की को स्वप्न में दिखाई दी। काम-शिक्षा देने का माँ को बड़ा सुनहरा मौका मिला था। लेकिन

---

*नवीन मनोविज्ञान ने मन के दो भाग किये हैं—ज्ञात और अज्ञात। जिन विचारों, भावनाओं आदि पर मनुष्य का अधिकार रहता है, उसे ज्ञात मन कहते हैं। इसके विपरीत उन कटु और अरुचिकर अनुभवों को जिन्हें ज्ञात मन न मालूम कब और कैसे भूल जाता है, अज्ञात मन कहते हैं। दूसरे शब्दों में माता-पिता द्वारा दबाई और कुचली हुई इच्छाएँ, भावनाएँ और रुचियाँ आदि ही अज्ञात मन है। समाज में फैली हुई भयंकर विकृतियाँ और मानसिक रोग बचपन में दबाई हुई इच्छाओं का ही परिणाम हैं। अज्ञात मन ज्ञात मन की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है। मन बर्फ या उस चट्टान के समान है जिसका बहुत थोड़ा भाग पानी के ऊपर और अधिकांश भाग पानी के नीचे होता है। ऊपर के भाग को ज्ञात मन और नीचे के भाग को अज्ञात मन समझिए।

अपनी अज्ञानता के कारण शिक्षा देने के बजाय उसने लड़की के मन में 'काम' के प्रति पाप-भावना पैदा कर दी।

सच बात तो यह है कि हमें बालकों की प्रत्येक क्रिया में काम-विकृति की गन्ध आने लगती है। यही कारण है कि जब बालक नंगे फिरते हैं, किसी मर्द या औरत के बिलकुल नंगे बदन को देख लेते हैं, या कभी वर-वधू का खेल खेलने लगते हैं, अथवा राजा-रानी का नाटक करने लगते हैं तो हम उनकी इन क्रियाओं को फूटी आँखों भी नहीं देख सकते। उसी दम नियम बना देते हैं—"नंगे मत फिरो, कोई नंगा हो तो उसे मत देखो, वर-बधू या राजा-रानी के गन्दे खेल मत खेलो। ऐसा करोगे तो सख्त सजा मिलेगी।" ऐसे कड़े नियम बना देने से बालकों की जिज्ञासा और भी बढ़ती है। वे लुक-छिप कर सब कुछ करते रहते हैं। माता-पिता के गुप्त अंगों को, उनकी-चेष्टाओं को, छिपे-छिपे देखने की कोशिश करते हैं। मनोविज्ञान का यह साधारण नियम है कि जिस काम से बालक को हम रोकते हैं उसे वे अवश्य करते हैं।

## हस्तमैथुन के प्रति हमारी कुदृष्टि का कुपरिणाम

इसी प्रकार जब बालकों में हस्त मैथुन की आदत पड़ जाती है, तो हमारे क्रोध, रोष और चिन्ता का ठिकाना नहीं रहता। प्रायः सभी बालकों में यह आदत पड़ जाती है। दो-तीन साल के बालक भी हस्तमैथुन करते हैं। और क्रियाओं की तरह इस क्रिया को भी जिज्ञासा तृप्त हो जाने पर बालक स्वतः छोड़ देते हैं। लेकिन अगर जबरदस्ती इस आदत को छुड़ाया जाए, या बालकों के आस-पास का वातावरण ठीक न हो तो बालक वर्षों तक इस आदत के शिकार बने रहते हैं। इस आदत को छुड़ाने का सबसे उत्तम उपाय है इसके असली कारणों को मालूम करके धैर्य और शान्ति से उन्हें दूर करना। यह आदत बालक अपने रिश्तेदारों से, मेहमानों से, दुश्चरित्र शिक्षकों से, उत्सवों से, विवाह-शादियों से, बरातों से, नौकरों से, अश्लील खेल-तमाशों से, गली-मुहल्ले के साथियों से, माता-पिता के कठोर



बालक भूमिति आकृतियों की ट्रे जमा रहा है



नियन्त्रण से सीख जाते हैं ! मेरे आश्चर्य और दुःख का ठिकाना न रहा, जब एक बालक ने काँपते-काँपते, डरते-डरते बताया कि उसके मामा ने उसे यह आदत सिखाई है। इसके अलावा एकान्त में निठल्ले और उदास पड़े रहने, खुली हवा में खेलने-कूदने और अपने भावों को प्रकट करने का मौका न मिलने, पेट में कीटाणुओं के हो जाने, नींद न आने पर भी सोने के लिए मजबूर किये जाने, जननेन्द्रिय के गन्दा रहने, मन में पाप-भावना पैदा हो जाने, जिज्ञासावृत्ति के कुचले जाने, जबरन अँगूठा चूसने और माता का दूध छुड़ाने आदि के कारण भी बालकों में यह लत पड़ जाती है। इसलिए मार-पीट या पाप का भय दिखाकर इस आदत को छुड़ाने का प्रयत्न करना पहले दर्जे की हिमाकत है, बालकों के जीवन से खिलवाड़ करना है। इससे तो यह आदत घटने के बजाय और भी बढ़ जाती है। पीटने वाले से घृणा हो जाने के कारण बालक उसे चिढ़ाने के लिए, उसका ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए बार-बार इस क्रिया को करते हैं। डाक्टर मोल ने तो यहाँ तक लिखा है कि सजा से पिटने वाले, पीटने वाले और देखने वाले सभी के अन्दर काम-उत्तेजना पैदा होती है। डाक्टरों, मनोवैज्ञानिकों और अनुभवों ने सिद्ध कर दिया है कि हस्तमैथुन से बालकों को इतनी हानि नहीं होती, जितनी हानि कि उन्हें इस आदत से पैदा होने वाली मानसिक चिन्ता और पाप-भावना के कारण होती है। यह पाप-भावना बालकों के शरीर और मन को इतनी हानि पहुँचाती है कि जिसकी कल्पना-मात्र से दिल दहल उठता है। बालक अन्दर ही अन्दर घुलते रहते हैं। डरते रहते हैं। आत्म-विश्वास खो बैठते हैं। अपने को तुच्छ समझने लगते हैं। उनकी इच्छा शक्ति नष्ट हो जाती है। रात को गहरी नींद नहीं आती। सोते-सोते उठ बैठते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि यमदूत उन्हें नरक में ले जायगा। एक शब्द में, बालक अपनी जिन्दगी से बेजार हो उठते हैं। उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वे सबसे घृणा करने लगते हैं। बड़े होने पर अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं।

## बड़ों की विकृत दृष्टि के कारण बालक में विकृति

बालकों की इस दयनीय दशा के लिए हम बड़े ही जिम्मेदार हैं। हमारी ही नासमझी के कारण बालक इन आदतों के शिकार होते हैं। हमारी ही विकृत दृष्टि बालकों में विकृति पैदा करती है। हमारा ही अज्ञान बालकों में 'काम' के प्रति पाप-भावना को जन्म देता है। हमारा अपराधी मन ही बालक को अपराध के गड्ढे में धकेलता है। हमारा दूषित दृष्टिकोण ही बाल्यावस्था में पागलपन जैसे भयंकर रोगों की बुनियाद डालता है। कामवृत्ति को पाप और घृणा की दृष्टि से देखने का यही नतीजा निकल सकता है। अगर हम बालकों को समय से पहले मृत्यु के मुँह में जाने से बचाना चाहते हैं, अगर हम बालकों का वास्तविक विकास चाहते हैं, अगर हम बालक को दानव न बनाकर सच्चा मानव बनाना चाहते हैं तो हमें अपने दूषित दृष्टिकोण में जल्दी से जल्दी क्रान्ति पैदा करनी होगी।

## विकृत दृष्टि को सुधारने के कुछ उपाय

इसके लिये हम कुछ उपयोगी और अनुभूत सुझाव आपके सामने रखते हैं। इन पर अमल करने से आप भी सुखी होंगे और आपके बालक भी। समाज का भी बड़ा हित होगा। उसे स्वस्थ, सच्चे और सुलझे हुए नागरिक मिलेंगे जिनका आज सर्वथा अभाव है।

१—सबसे पहले अपने अपराधी मन को शुद्ध करें। कामवृत्ति को पापों का मूल समझना छोड़ दें। इसे घृणा की दृष्टि से देखना बन्द कर दें। इसके असली और सच्चे रूप को समझने का प्रयत्न करें। अपने मन को अच्छी तरह टटोलें और अपने बालकों को अपने पापों के लिये प्रायश्चित्त करने के लिये मजबूर न करें।

२—जन्म तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी बालकों के सवालों का जवाब अन्य विषयों के सवालों के जवाब की तरह बिलकुल स्पष्ट और बिलकुल सही

सही देना सीखें। यदि न आते हों तो किसी अनुभवी मित्र या मानस-शास्त्री से मालूम करें। जवाब देते समय किसी प्रकार का संकोच, किसी प्रकार की झिझक, किसी प्रकार की मुसकराहट या उत्तेजना न दिखाएँ। जवाब देते समय बालकों की उम्र, उनके पूर्व अनुभव, उनकी समझ आदि बातों का ख्याल रखें। जवाब नपे-तुले होने चाहिये न बहुत लम्बे और न बहुत छोटे। भाषा बिल्कुल सीधी और सरल हो। काम-संबंधी जानकारी देने में जल्दी न करें। अन्य विषयों की तरह काम का ज्ञान भी धीरे-धीरे और आयु के अनुसार होना चाहिए। एक ही दफे में सब कुछ बालक के दिमाग में न भर दें। कुछ बालक बड़े शर्मीले होते हैं। उन्हें सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित करें। फिर भी अगर वे न पूछें तो आप खुद ही जन्म आदि के बारे में उन्हें सब आवश्यक बातें बता दें। इधर-उधर भटकने का मौका उन्हें न दें।

३—बालकों की निर्दोष भाव से की गई काम चेष्टाओं को घृणा और पाप की दृष्टि से देखकर काम के प्रति उनके मन में घृणा और पाप के भाव पैदा न होने दें। इन क्रियाओं के विषय में रात-दिन चिन्तित न रहें। आपके चिन्तित रहने से बालक अपनी क्रियाओं को पाप समझने लगेंगे और अन्दर ही अंदर घुल-घुल कर दुःखी होते रहेंगे। बालकों की क्रियाओं को अपनी दृष्टि से न देखकर उन्हीं की दृष्टि से देखें। उनकी दृष्टि में जो खेल है वह आपकी दृष्टि में अपराध हो सकता है।

४—बालकों की गुप्त इन्द्रियों को खराब समझने की आदत छोड़ दें। शरीर के दूसरे अंगों की तरह उन्हें भी स्वाभाविक दृष्टि से देखें। इस बात का सदा ख्याल रखें कि वे गन्दी न रहें, बिलकुल स्वच्छ रहें। इन्द्रिय के गन्दा रहने से हस्तमैथुन की आदत पड़ जाती है।

५—बालकों को शरीर के सब अंगों के नाम, उनका कार्य, उनकी उपयोगिता तथा उनके दुरुपयोग से होने वाली हानियों का ज्ञान खूब

अच्छी तरह करा दें। यह भी बता दें कि शरीर के सब अंगों की तरह गुप्त इन्द्रियों को भी साफ रखना कितना जरूरी है।

६—बालकों की काम-वृत्ति और काम-जिज्ञासा जबरन मार-पीट कर, लालच देकर या धर्म नीति के उपदेश झाड़ कर दबाने की भयंकर गलती भूल कर भी न करें। बालक का अज्ञात मन उस बात में अधिक रुचि रखने लगता है जिससे उसको रोका जाता है। आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए, आपको चिढ़ाने के लिए, आपसे बदला लेने के लिए बालक इन क्रियाओं में और अधिक रस लेने लगते हैं।

७—बालकों से यह कभी न कहें कि इन क्रियाओं के करते रहने से वे बुद्धू, गन्दे या नालायक हो जायेंगे। सदा याद रखें कि बालकों से आप जैसा कहेंगे वे वैसे ही बन जायँगे। आपकी हर एक बात का बालकों के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। आप उन्हें पागल कहेंगे तो वे पागल बन जावेंगे।

८—बालक के साथ मित्र की तरह घुल-मिल कर रहें। उनके विश्वास पात्र बनें। उन्हें इतना निर्भय करदें कि अपने दिल की कोई भी बात वे आपसे न छिपाएँ। जो कुछ पूछना हो, आपके पास दौड़े चले आएँ। भारी से भारी अपराध को भी आपके सामने रखते हुए जरा भी न हिचकिचाएँ। जब तक आपके बालक आपसे डरते रहेंगे आप उनका कुछ भी सुधार नहीं कर सकेंगे।

९—बालकों को गन्दे खेलों, तमाशों, वाहियात उत्सवों, व्यर्थ के मेलों-ठेलों और बरातों आदि में हरगिज न ले जायें। उनका झूठा लाड़-प्यार न खुद करें और न दूसरों को करने दें। बालकों का चुम्बन भी न करें। दूसरों को भी ऐसा न करने दें। बालकों के साथियों पर देख-रेख रखें। बालकों के साथी गन्दे हैं तो आपके बालक भी उनसे गन्दगी सीख जायेंगे।

१०—बालकों को रात के समय अपने पास हरगिज न सुलायें। उन्हें अलहदा कमरे में सुलायें। आपकी चेष्टाओं का बालकों के अज्ञान मन पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है। आपकी इस लापरवाही से वे कितनी ही कुचेष्टाएँ सीख जाते हैं। माता-पिता का खेल खेलना वे आप से ही सीखते हैं। इससे कितने ही अप्राकृतिक दोष भी बालकों में आ जाते हैं।

११—बालकों को तंग जाँघिया न पहनाएँ। इससे इन्द्रिय के साथ रगड़ खाने से हस्त मैथुन की आदत पड़ सकती है। बालक नंगे रहना चाहें तो नंगे रहने दें। नंगे रहने से उनकी बहुत सी जिज्ञासाएँ तृप्त हो जायेंगी। भाई-बहन का भेद समझने में उन्हें दिक्कत न होगी और वे गुप्त इन्द्रियों से घृणा करना न सीखेंगे।

१२—बालकों को अपने जैसा चटपटा, चरपरा और अवैज्ञानिक ढंग से बनाया हुआ तत्वहीन भोजन न दें। बालकों को सदा सादा और स्वास्थ्यप्रद भोजन दें। जब-तब खाने की आदत न डालें। साधारणतया समय पर ही भोजन करने की आदत डलवाएँ।

१२—दो साल के बालकों को बता देना चाहिए कि लड़का लड़की नहीं बन सकती और लड़की लड़का नहीं बन सकता! लाड़-प्यार में आकर कितने ही माता-पिता लड़की को लड़का कह कर बुलाते हैं जिससे बड़े होने पर लड़की के मन में बड़ी हलचल मचती है और वह बड़ी दुःखी रहने लगती है।

१४—लड़के-लड़कियों में कतई भेद-भाव न करें। दोनों को समान दृष्टि से देखें। घरों में प्रायः लड़कियों को बहुत घटिया समझा जाता है। लड़कियाँ इस पक्षपात को अन्दर ही अन्दर बड़ा महसूस करती हैं। वे सोचने लगती हैं कि लड़कों जैसी जननेन्द्रिय का अभाव ही उनकी बेक़दरी का कारण है। इसलिए उनका अज्ञात मन लड़कों जैसी

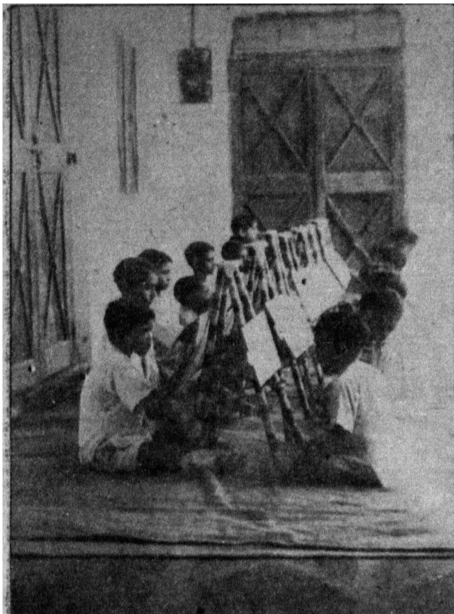
जननेन्द्रिय की इच्छा करने लगता है जिससे वे बड़ी दुःखी रहने लगती हैं, अपने को धिक्कारती हैं और हीन समझने लगती हैं।

१५—बालकों को काम-चेष्टाओं से बचाने के लिए उनके खेलने-कूदने, नाचने-गाने तथा अपनी मन-पसन्द प्रवृत्तियाँ करने की समुचित व्यवस्था कर दें। इससे बालकों का ध्यान अपने शरीर की ओर न जाकर खेल-कूद में लगा रहता है। प्रातः उठने से लेकर रात को सोने के समय तक का प्रोग्राम ऐसा होना चाहिये कि बालक अपनी इच्छानुसार अपने मनचाहे कामों में संलग्न रहें। स्वस्थ, प्रसन्न और काम में रत रहने वाले बालकों को बुरी आदतों का खयाल तक नहीं आता। वे दिन-रात अपने विकास में लगे रहते हैं। निःसन्देह रुचिकर काम ही कामवृत्ति को ठीक-ठीक विकसित करता है और इसे विकृत नहीं होने देता।

१६—यह विश्वास रखिये कि अन्य समस्याओं* की तरह काम-समस्या को भी बालक ही हल कर सकता है। धर्म और नीति के जोरदार उपदेशों से यह समस्या कभी हल नहीं होगी। अगर बचपन में बालक की कामवृत्ति को दबाने या कुचलने के बजाय उसका समुचित विकास हुआ है तो भविष्य में काम-समस्याओं के उपस्थित होने की संभावना ही नहीं रहेगी। बाल्यावस्था में पड़ी हुई मजबूत बुनियाद को भूकम्प के धक्के भी नहीं हिला सकते।

---

* इन समस्याओं पर पहले प्रकरण में प्रकाश डाला गया है।



बच्चे स्वेच्छा से चित्र बना रहे हैं



बालक अपनी थालियाँ माँजने के लिए जा रहे हैं

# बालक और अनुशासन

## महत्वपूर्ण कौन ? बालक या अनुशासन

अनुशासन की समस्या वास्तव में बालक बनाम अनुशासन की समस्या है। यह समस्या इस प्रश्न पर विचार करने से बड़ी सुगमता से हल हो जाती है कि हम बालक को अधिक महत्व देते हैं या अनुशासन को ? दूसरे शब्दों में हमको यह विचार करना है कि हमारी दृष्टि में अधिक मूल्य किसका है—बालक का या अनुशासन का ? इस प्रश्न का उत्तर मिलते ही हमारी समस्या का पूर्ण समाधान हो जायेगा। उदाहरणार्थ, उन दो व्यक्तियों के दृष्टिकोण तथा विचारों में बड़ा अन्तर होगा जो सेना के लिये युद्ध कला की शिक्षा के समय पहले मनुष्य की महत्ता मानते हैं, अथवा पहले युद्ध-साधनों की।

आजकल प्रत्येक शिक्षक या माता-पिता, जिसे अपने महान् कर्तव्य का खयाल है, तथा जिसमें इसके लिये आवश्यक आदर्शवादिता और चरित्र की दृढ़ता विद्यमान है, अनुशासन की अपेक्षा बालक को अधिक महत्व देता है। इसका क्या कारण है ? यही कि उसकी सम्मति में बालक सर्वश्रेष्ठ अनुशासन की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान है। वह जानता है कि बालक का विकासोन्मुख जीवन कायदे-कानूनों की अपेक्षा कहीं बहुमूल्य है। उसे अनुशासन की कठोर रस्सियों में बाँध कर नहीं रखा जा सकता।

## कठोर अनुशासन का कुपरिणाम

इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह शिक्षाक्रम में अनुशासन का महत्व स्वीकार नहीं करता। उसे अनुशासन की महत्ता ज्ञात है, परन्तु दूसरे

ही प्रकार से। उसे योगियों और सन्तों की इस वाणी में पूर्ण विश्वास है कि जीवन स्वयं एक संगीत है, तथा पूर्ण विकास के लिये बालक को इसी संगीत की लय के अनुसार चलना सीखना होगा। विश्व संगीत की इस ध्वनि के अनुसार व्यक्ति का स्वर-सन्धान ही अनुशासन कहलाता है। भाव यह है कि उसकी दृष्टि पूर्ण जीवन पर है, न कि इसके किसी एक अंग पर। चाहे हम उसे किसी नाम से ही क्यों न पुकारें—देश-प्रेम, साम्राज्यवाद, स्कूल अथवा वंशगत गौरव। इसलिये शिक्षक या माता-पिता को सब से पहले अपने अन्दर एक कलाकार जैसी भावना पैदा करनी चाहिये। कलाकार वही है जो प्रत्येक क्षण अपने हृदय में विश्वात्मा का दर्शन करता है और कार्य विशेष में विश्व-संगीत की लय को सुनता है। यदि बालक का अभिभावक या शिक्षक ऐसा करने में असमर्थ है, यदि उसमें अपने इस कर्तव्य को एक धार्मिक कृत्य समझने की निष्ठा नहीं है, तो प्रतिक्षण अपने पथ से उसके विचलित हो जाने की आशंका बनी रहेगी। इस प्रकार का शिक्षक अथवा अभिभावक बालक की स्वतन्त्र आत्मा को अनुशासन की शृङ्खलाओं* में बाँधने का प्रयत्न किये बिना

* बालक के महत्व को न समझने के कारण आज तो घरों और स्कूलों में प्रायः बालक की अपेक्षा अनुशासन को ही अधिक महत्व दिया जाता है। उसे अनुशासन की शृङ्खलाओं में जकड़ कर रखा जाता है। हम रोजाना देखते हैं कि अनुशासन के नाम पर माता-पिता और शिक्षक बालक पर घोर अत्याचार करते हैं। बालक जब उनकी जा-बेजा आशाओं का पालन नहीं कर सकता, उनकी इच्छाओं और धारणाओं के अनुसार नहीं चल सकता, उनके सामने कभी अपने दिल के उन भावों को प्रकट करने की गुस्ताखी कर बैठता है, जो उन्हें पसन्द नहीं रहते, तो अपनी झूठी शान कायम रखने के लिये अनुशासन के नाम पर वे बुरी तरह उस पर बरस पड़ते हैं और जब तक अपनी मनमानी नहीं करवा लेते, तब तक चैन से नहीं बैठ सकते।

कठोर अनुशासन का बालक पर प्राणघातक असर पड़ता है। इससे बालक का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। जबरदस्ती कराये गये कामों को छोड़ कर वह और कुछ करने के कतई काबिल नहीं रहता। दूसरों के इशारों पर नाचते रहना ही उसका परम

नहीं रहेगा। ऐसी दशा में बालक का, उससे इसके सिवाय और सम्बन्ध ही क्या हो सकता है कि वह उसे एक ऐसा जेलर समझे जो कि अपने कैदी को झनझनाती जञ्जीरों में कसे रखता है। बालक ऐसे अभिभावक या शिक्षक को अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले के रूप में ही जान सकता है एक बार ऐसी अवांछनीय स्थिति उत्पन्न हो जाने पर अनुशासन अनुशासन नहीं रह जाता वह तो जुल्म बन जाता है जो विकसित होते हुये बालक की आत्मा को प्रतिक्षण कुचलता रहता है।

## अनुशासन के लिये स्वस्थ वातावरण का निर्माण

परन्तु इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कलाकार कीसी भावना रखने वाले शिक्षक मिलते ही कहाँ हैं, अथवा इस प्रकार की शिक्षा केवल एक आदर्श अवस्था में ही संभव हो सकती है। अतएव हमको पूर्ण आदर्श एवं आदर्श के पूर्ण अभाव के बीच का कोई रास्ता ढूँढ़ना पड़ेगा। इसके लिये हमको बालक के चारों ओर ऐसा वातावरण और वायुमण्डल प्रस्तुत करना होगा जो उसकी जन्मजात अनुभूति को

---

कर्त्तव्य बन जाता है। अपने आप फैसला करके यथोचित काम करने की क्षमता ही उसमें नहीं रह जाती, जो अनुशासन का वास्तविक ध्येय है और होना चाहिए। वह जो कुछ करता है, डर से करता है। बड़ों के सामने तो सब काम ठीक-ठीक करता है, लेकिन उनकी आँखों से ओझल होते ही उनकी सब आज्ञाओं और नियमों को बलाये ताक रख कर अपने दिल का गुब्बार निकालता है। ऊपर से लादे हुये अनुशासन का और कुछ नतीजा हो ही नहीं सकता। इससे अच्छी और स्थायी आदतों का विकास हो ही नहीं सकता। कितने ही बालकों में बड़े होने पर कठोर अनुशासन की प्रतिक्रिया अत्यन्त घातक होती है। कमालपाशा और स्टालिन के उदाहरण आँखें खोलने वाले हैं। दोनों के अभिभावक इन दोनों को कट्टर धार्मिक बनाना चाहते थे। जब तक अभिभावकों का कठोर अनुशासन रहा, तब तक ये धर्म-कर्म करते रहे और धार्मिक शिक्षा लेते रहे। लेकिन अंकुश के उठते ही, स्वतन्त्र होते ही दोनों ने धर्म की धज्जियाँ उड़ा दीं। धर्म के कट्टर शत्रु बन गये। आज हम अपने चारों ओर जिस आतङ्कवाद को देख रहे हैं, वह इस कठोर अनुशासन की ही देन है।

—लेखक

जाग्रत कर सके क्योंकि इस प्रकार की अनुभूति जाग्रत किये बिना बालक से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह स्वेच्छा से अपने शिक्षक के साथ सहयोग कर सकेगा या और दूसरों के साथ मिल कर समाज के नियमों को सहर्ष स्वीकार कर लेगा।

## अनुशासन के विकास के लिये उपयुक्त स्थान

अतएव बच्चों का स्कूल ऐसे स्थान पर बना होना चाहिये जहाँ गाड़ियों या ताँगों की कर्कश ध्वनि अथवा तरह-तरह की बोलियाँ न सुनाई देती हों। सामाजिक जीवन के विकास के लिये इससे अधिक हानिकारक कोई बात नहीं कि बालक के आसपास जीवन और प्रवृत्तियों के विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति रहते हों। स्कूल की इमारतें भी सब ईंट या पत्थर की ही बनी हुई न होनी चाहिएं, न सब सड़कें और पगडण्डियाँ इत्यादि ही एक प्रकार की हों, क्योंकि इस प्रकार की वस्तुओं से बालक के हृदय में सहज ही यह भावना उत्पन्न हो जाती है ( बालक होने के कारण वह अपनी भावना को व्यक्त तो नहीं कर सकता ) कि जीवन केवल एक मशीन की भाँति निश्चल, जड़, एवं विभिन्नता रहित है। अतएव स्कूल की स्थिति यदि प्रकृति की गोद में न हो तो प्राकृतिक दृश्यों के निकट तो अवश्य होनी चाहिये, जिससे अपने चारों ओर बढ़ती हुई हरियाली को देख कर बालक जीवन की सर्वव्यापकता का अनुभव कर सके। यदि स्कूल ऐसे स्थान पर हो जहाँ इस प्रकार के दृश्य संभव नहीं, जैसे कोई मरुप्रदेश, तब भी बालक की प्रारम्भिक अवस्था में उसका शिक्षणालय भीड़ से दूर किसी निर्जन स्थान पर होना चाहिये। वहाँ निर्जन तथा कोलाहल से दूर शान्तिपूर्ण वातावरण में बालक को प्रकृति की आत्मा के मूल में विद्यमान शान्ति का आभास होगा। यदि यह भी संभव न हो तो कम से कम उस स्थान के चारों ओर फूलों के गमले, लताकुञ्ज या सुन्दर चित्रकारी तो होनी ही चाहिएं, जो बालक को सृष्टि की सुन्दरता के विषय में कोई पाठ दे सके।

## बालक में मनोभावों को ताड़ने की विलक्षण शक्ति

वाह्य वातावरण के पश्चात् हमें वायुमण्डल की ओर ध्यान देना चाहिये। वास्तव में वायुमण्डल* और कुछ नहीं है, यह तो शिक्षक के अन्तर्जीवन का प्रतिबिम्ब मात्र है। शिक्षक अपने आपको कितना ही आडम्बरों से आवृत करले, वह स्वयं अपने को तथा औरों को धोखा देने का कितना ही प्रयत्न करे, पर वास्तविकता को छिपाने में सर्वथा असमर्थ रहेगा। बालक की तीक्ष्ण बुद्धि उसके शब्द-जाल को भेद कर सीधी सतह पर जा पहुँचती है। बच्चे में यह अद्भुत प्रतिभा है कि वह किसी भी व्यक्ति की सच्चाई या झुठाई को तुरन्त ही भाँप लेता है। यही कारण है कि संसार के सब महान् पुरुषों को बच्चों से बड़ा प्रेम रहा है, तथा बच्चों को उनसे।

## बालक स्वभाव से उद्दंड नहीं होता

दिन प्रतिदिन बालकों के सम्पर्क में आने से अनेक शिक्षक यह विश्वास करने लगते हैं कि बालकों में उद्दंडता की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। किन्तु वे यदि तथाकथित उपद्रव का सही अर्थ समझ लें तो उन्हें तुरन्त अपनी भूल मालूम हो जाए। शरारत वास्तव में शिक्षक और बालक

* स्कूल की तरह घर का वायुमण्डल भी सुन्दर और स्वच्छ होना चाहिये। अगर घर में माता-पिता लड़ते-झगड़ते रहते हैं, किसी बालक की तारीफ और किसी की बुराई करते रहते हैं, बालक बालक में भेद भाव रखते हैं, बालक के साथ छल-कपट और झूठ से काम लेते हैं तो बालक पर इसका बहुत बुरा असर पड़ेगा। वह माता-पिता पर सन्देह करने लगेगा, उन पर उसका विश्वास न रहेगा। ऐसे दूषित वायुमण्डल में अच्छी आदतें बनाने का उसे मौका न मिलेगा, जो अनुशासन का वास्तविक उद्देश्य है। माता-पिता के व्यवहार को देख कर ही बालक अपनी आदतें बनाता है, जीवन निर्माण करता है। अतः माता-पिता को खूब सतर्क और सजग रहना चाहिये।

—लेखक

के पारस्परिक सम्बन्ध में विकार का चिह्न है। यदि बालक उपद्रवी अथवा हठी है तो इसका अर्थ यही है कि शिक्षक की प्रवृत्ति से उसकी प्रवृत्ति मेल नहीं खाती, इस कारण दोनों में विरोध है। मूलतः बालक सदैव मेल का अभिलाषी है, इसलिए शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह अनुशासन के नाम पर बालक को आज्ञा पालन के लिए विवश करने अथवा स्कूल से निकल जाने का आदेश देने से पहले इस विरोध* के मूल कारण को खोजने की चेष्टा करे।

## बालक के साथ शिक्षक का व्यवहार

वास्तव में शिक्षक के लिए उचित है कि बालक के साथ उसका व्यवहार ऐसा हो जैसा किसी आराधक का अपने आराध्य के प्रति होता है। बालक स्वयं ईश्वर-का रूप है, यह भावना हृदय में रखकर यदि विचार किया जाय तो बालक की धृष्टता, समस्त उत्पात, छीना झपटी, उच्चाकांक्षा एवं हठ आदि प्रवृत्तियाँ उसके जागरूक दैवी जीवन की क्रीड़ाएँ ही प्रतीत होंगी। कृष्ण की बाल-लीलाओं से हमें जो आनन्द प्राप्त होता है, वही आनन्द हम प्रत्येक बालक की क्रीड़ाओं से प्राप्त कर

---

*अनुशासन सम्बन्धी विरोध को टालने के लिये उचित है कि बालक को जो आज्ञाएँ दी जाएँ उनका हेतु और कारण उसे साफ-साफ शब्दों में बता देना चाहिये। बालक से सम्बन्धित सभी कार्यों में उसकी राय अवश्य लेनी चाहिये। अगर उससे गलती या देर हो जाय तो उसे डाँटना नहीं चाहिये। बालक के साथ बालक बनकर रहना चाहिए। जब हम अपने को बड़ा और बालक को छोटा समझते हैं, तभी संघर्ष होता है। बालक के साथ किये हुए वायदों को पूरा करना चाहिये, बालक को व्यर्थ के नियमो और बन्धनों में न जकड़ कर उसे स्वतन्त्र रखना चाहिये। स्वतन्त्र बालक कभी अनुशासन भंग नहीं करता। स्वतन्त्रता और अनुशासन दो परस्पर विरोधी चीजें नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। स्वतन्त्रता और अनुशासन के इस रहस्य को हम समझलें तो फिर अनुशासन की कभी समस्या ही उपस्थित न हो।

—लेखक

सकते हैं। बेचारा बालक भी क्या करे, उसके मन में नाना प्रकार की भावनाएँ उठती रहती हैं, जिन्हें वह अच्छी तरह समझ नहीं पाता, अपने भावों को व्यक्त रूप देकर वह अन्धकार से प्रकाश में आने की चेष्टा करता है। शिक्षक के लिए यह अत्यन्त गौरव तथा हर्ष की बात है कि उसे बालक के इन प्रयत्नों को, जिनका ध्येय केवल इतना ही होता है कि वह अपने को समझे तथा जान सके, इतने निकट से अध्ययन करने का अवसर मिलता है। क्या प्रत्येक शिक्षा-शास्त्री ने समस्त शिक्षा का ध्येय यह नहीं बतलाया है कि 'स्वयं को पहचानो'।

परन्तु ज्ञान की यह पिपासा तभी जाग्रत होती है, जब बालक के प्रति शिक्षक के हृदय में अगाध प्रेम होता है। इस प्रेम के प्रकाश में सब विरोध-भावनाएँ तिरोहित हो जाती हैं। यदि शिक्षक, जैसा आजकल अकसर होता है, इस सारभूत एकता को नहीं देख सकता तो इसका कारण यही है कि अपनी विशिष्टता अथवा अहंकार की भावना से लदे हुए उसके हृदय में प्रेम के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। इसीलिए जब कभी वह बालक को पाठ्य-पुस्तकों अथवा रूढ़ियों द्वारा निर्धारित पगडंडी से इधर-उधर डिगते हुए देखता है, तभी उसे आकाश गिरता हुआ नजर आता है।

## आनन्दमय वातावरण की आवश्यकता

बालकों के सबसे बड़े प्रेमी ईसामसीह का कथन है "प्रेम ही समस्त नियमों की चरम सिद्धि है।" संसार के सभी अन्य महापुरुषों ने इस कथन की सत्यता को स्वीकार किया है। ईसा ने ही कहा है कि ईश्वरीय राज्य अथवा आनन्द के राज्य के सबसे बड़े अधिकारी बालक हैं। जहाँ आनन्द है, वहीं स्वर्ग है, तथा जहाँ स्वर्ग है वहीं आनन्द है। इसलिए अपने तथा बालक दोनों के हित में यही आवश्यक है कि हमारा सारा वातावरण आनन्दमय-स्वर्गीय रहे।

## प्रेम द्वारा अनुशासन

अतएव, जैसा रवीन्द्रनाथ ने कहा है, शिक्षक अपने आपको यह न समझे कि वह एक जेलर की भाँति है, जिसका कर्तव्य है कि सदैव छड़ी का भय दिखाकर अपने कैदियों को अनुशासन में रखे। वरन् वह तो एक पवित्र बलिवेदी के सम्मुख खड़ा हुआ है जहाँ केवल प्रेम का ही सार्वभौमिक राज्य है। इस अवस्था में अनुशासन के लिए कोई स्थान नहीं है। अनुशासन छिपे हुए भय का प्रतीक है तथा इस भय के भूत को भगाने में केवल प्रेम ही समर्थ है।

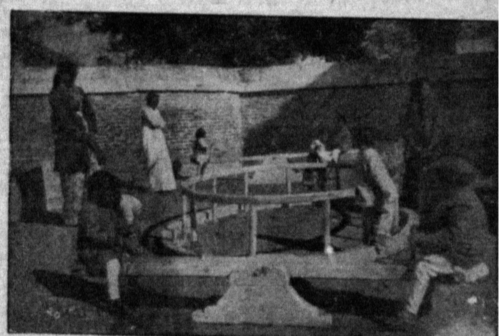
संक्षेप में शिक्षक का कर्तव्य है कि ज्ञान के प्रकाश की प्रार्थना करने से पहले वह प्रेम के लिए प्रार्थना करे। तभी रवीन्द्रनाथ के इन शब्दों में अन्तर्हित महान् सत्य का उसे सही अनुभव होगा : "ज्ञानेर भोजन आनन्देर भोजन" —

ज्ञान का भोजन आनन्द का भोजन है।

———



बच्चा नल से पानी भर रहा है



बच्चे मैदान में खेल रहे हैं



बच्चे कागज के फूल काट रहे हैं

# सजा, इनाम, होड़

## सजा आदि के बारे में मिथ्या धारणा

सजा, इनाम और होड़ तीनों ही चीजें बालक को हानि पहुँचाती हैं। लेकिन फिर भी हम इन तीनों पर लट्टू हैं। हमारी यह धारणा है कि सजा न रहे तो बालक शैतान और बदमाश हो जाएँ, एक फूटा अक्षर भी पढ़कर न दें, घर और स्कूल में अराजकता फैल जाए। इनाम की प्रथा हटा दी जाए तो बालक उत्साह से काम करना छोड़ दें! होड़ को बन्द कर दिया जाए तो बालकों की शक्तियाँ अविकसित रह जाएँ, उन्हें काठ मार जाए।

## घर और शाला में सजा का बोलबाला

सबसे पहले हम सजा को लेते हैं, जो तीनों में सबसे भयंकर है। घर और स्कूल में बालक पर जो अत्याचार होते हैं, उनमें यह सबसे अधिक प्राणघातक है। सजा की निरर्थकता सिद्ध हो जाने पर भी घर और शाला में सजा का बोलबाला है। हर जगह बालक के साथ क्रूरता और कठोरता का व्यवहार किया जाता है। आज की सभ्य कही जाने वाली दुनियाँ 'पशु-क्रूरता-निवारक' कानून तो बनाती है, लेकिन बालक के साथ रात-दिन जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया जाता है, उसके लिए कोई कानून नहीं बनाती। नन्हा, निर्बल, बेजबान बालक हमारा मुकाबला नहीं कर सकता, सत्याग्रह नहीं कर सकता, हमारे खिलाफ कुछ नहीं कर सकता। ऐसे बालक के साथ जोर-आजमाइश करना पहले दर्जे की निर्दयता और निर्बलता नहीं तो और क्या है? अपने से बलवान के सामने तो हम भीगी

बिल्ली बन जाते हैं, चूँ तक नहीं करते। लेकिन कोमल-हृदय बालक के सामने तीसमारखाँ बनने में हमें जरा भी शर्म नहीं आती। जन्म से ही हम बालक को सजा देने लगते हैं। हौवा, कौवा, आदि का डर दिखाकर उसका दम खुश्क कर देते हैं। दो साल की रेखा बिल्ली को देखना तो दूर किनार, बिल्ली का नाम सुनते ही थर-थर काँपने लगती है, जैसे भयंकर मलेरिया का प्रकोप हो गया हो। एक दिन बिल्ली की तसवीर जब उसके सामने आयी, तो वह दौड़कर इस तरह घर में घुस गई, जैसे चूहा बिल्ली को देखकर घर में घुस जाता है!

## सजा के रूप

सजा के अनेक रूप हैं। साधारणतया सजा का अर्थ है—स्थूल शरीर को दुःख पहुँचाने के लिए उसे किसी चीज से मारना। कभी-कभी यह सजा इतना भयंकर रूप धारण कर लेती है कि बालक मरता नहीं तो अधमरा जरूर हो जाता है। इसके अलावा अनेक सूक्ष्म सजाएँ भी हैं, जैसे तीर की तरह चुभने वाले शब्द कहना, दिल को ठेस पहुँचाने वाले ताने मारना, सबके सामने शर्मिन्दा करना, निन्दा करना, गलती को बढ़ा-चढ़ा कर बालक के सामने रखना, जाति या वंश के गौरव का ध्यान दिलाना, घर या शाला की परम्पराओं की ओर ध्यान खींचना आदि। शारीरिक सजा की अपेक्षा इन सूक्ष्म सजाओं का बालक के कोमल मन पर बड़ा घातक असर पड़ता है। वह सदा उदास, निराश और असन्तुष्ट रहने लगता है! अन्दर ही अन्दर कुढ़ता रहता है। उसे सदा भय रहता है कि कहीं उससे कोई गलती न हो जाए, उसकी जाति, वंश या स्कूल के नाम को बट्टा न लग जाए। बालक बेवकूफ और नासमझ नहीं होता। वह छोटी से छोटी बात को भी बड़ा महसूस करता है। इसलिए सजा का कोई भी रूप क्यों न हो, उसे भारी आघात पहुँचे बिना नहीं रह सकता। इसका मतलब यह हुआ

कि बालक को किसी भी रूप में सजा देना उसके साथ भारी अन्याय करना है।

## फिर सजा क्यों ?

जरा उँगली दिखाने, आँखें निकालने और चिल्ला कर बोलने से ही जब बालक के दिल को सख्त चोट लगती है तो फिर हम बालक को सजा देते क्यों हैं ? इसके बहुत से कारण हैं।

## सजा एक अंधविश्वास

अनेक अन्धविश्वासों और परम्पराओं की तरह सजा भी एक अन्धविश्वास है जो सदियों से चला आ रहा है। सजा के पक्षपाती कहा करते हैं कि सजा से बालक सहनशील बनता है, उसका शरीर सुदृढ़ होता है, वह बहुत जल्दी पढ़ता-लिखता है, पथ-भ्रष्ट नहीं होता, बुरी आदतों का शिकार नहीं होता, बार-बार गलती करने का साहस नहीं कर सकता, नीतिवान् और चरित्रवान् बनता है। अपने अन्धविश्वासों के समर्थन में वे शास्त्रों और वेदों के हवाले देते हैं। इसी चक्कर में फँस कर धार्मिक वृत्ति के लोग बालक को धार्मिक बनाने के लिये सजा देते हैं। मेरे दुःख की कोई सीमा न रही जब मैंने एक गुरुकुल में सन्ध्या करते हुये बालकों को पिटते देखा। हमारे इस अन्धविश्वास में कोई सचाई नहीं है। भला धर्म, नीति और चरित्र का सजा से क्या सम्बन्ध ? सजा खुद बुरी से बुरी बुराई है, यह किसी को क्या खाक अच्छा बनायेगी। बबूल पर आम का फल लगते किसी ने देखा है क्या ? सजा में इतना असर होता तो आज दुनियाँ में फरिश्ते दिखाई देते। यह संसार स्वर्ग बन गया होता।

## बड़ों का अपराधी मन, सजा के लिये जिम्मेवार

मनोविज्ञान की दृष्टि से हमारा अपराधी मन हमें सजा की ओर घसीटता है। अपने अपराधों के लिये अपने को सजा न देकर हम दूसरों को सजा

देते हैं। यह बात विचित्र अवश्य लगती है, लेकिन है बिलकुल सही। हम रोजाना एक नहीं अनेक अपराध करते हैं, हिमालय जैसी भारी गलतियाँ करते हैं, बात-बात में झूठ बोलते हैं, मानसिक चोरी करते हैं, और न मालूम कितने कुकर्म करते हैं। लेकिन फिर भी हम अपने को सजा नहीं देते, और न सजा के काबिल ही समझते हैं। सजा देना तो दरकिनार, अफसोस तक नहीं करते। अपराध और गलती को स्वीकार तक नहीं करते। लेकिन जब बालक से अनजान में, बिना किसी इरादे के अगर जरा-सी भूल हो जाती है, तो मार-मार कर उसकी चमड़ी उधेड़* देते हैं। यह अत्याचार नहीं तो और क्या है?

## तथाकथित सुधार के लिए सजा

सजा के हिमायती यह भी कहा करते हैं कि हम तो बालक को सुधारने के लिये, उसे कुमार्ग पर जाने से रोकने के लिये, और दूसरों को सबक देने के लिये ही सजा देते हैं। यह कोरा ढोंग और भ्रम है। सख्ती से अपराध कम नहीं होते, बल्कि और भी ज्यादा बढ़ते हैं। सुधार के बजाय बिगाड़ होता है। अपराध तो एक प्रकार का रोग है। सजा से घटेगा या बढ़ेगा? पुलिस, अदालत, जेल बढ़ते जा रहे हैं। सजाएँ बढ़ती जा रही हैं। लेकिन अपराधों में जरा भी कमी नहीं होती। उलटे अपराध दुगुने-तिगुने वेग से बढ़ते जा रहे हैं। हाँ, यह सही है कि सजा से तात्कालिक शान्ति व व्यवस्था अवश्य स्थापित हो जाती है। लेकिन अँकुश के हटते ही अशान्ति और अव्यवस्था का दौर-दौरा शुरू हो जाता है। सजा के भय से बालक थोड़ी देर के लिये चुप हो जाता है, लेकिन फिर बाद में वैसा ही करने लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि बालक ढोंगी बन जाता है। उसकी बुरी आदतें अधिकाधिक मजबूत हो जाती हैं। वह लुक-

*ललित के सुशिक्षित पिता ने उसकी एक मामूली सी गलती पर एक दिन क्रोध में आकर तड़ातड़ दर्जनों बेंतें झाड़ दीं। वह फूट-फूट कर रोता रहा, तड़पता रहा। लेकिन पाषाण हृदय पिता पर जरा भी असर न हुआ।

छिप कर अपराध करना सीख जाता या इतना उद्दण्ड हो जाता है कि जो कुछ करना होता है, सब के सामने खुल्लमखुल्ला करने लगता है और किसी की कुछ परवाह नहीं करता।

## आज्ञा न मानने पर सजा

इसके अलावा जब बालक हमारा कहना नहीं मानता, हमारी इच्छानुसार काम नहीं करता, हमारा सामना करता है, तो हमारे अहङ्कार को चोट लगती है और हम बिना सोचे समझे बालक को दो-चार चपत लगा कर अपने दिल को ठण्डा कर लेते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि जब माता-पिता आपस में लड़ पड़ते हैं तो उसका गुस्सा उतारते हैं बालक पर। इसी प्रकार घर में स्त्री या बच्चे से परेशान हुआ शिक्षक, कोई विशेष कारण न होने पर भी, किसी न किसी बालक को सजा देकर अपना क्रोध शान्त करता है। इस प्रकार बालक को हमने अपना क्रोध शान्त करने का एक साधन बना रक्खा है। उफ! बालक का इतना अपमान! इतना तिरस्कार!

## अज्ञानता के कारण सजा

मेरे खयाल में बालक को सजा देने का सब से बड़ा कारण हमारा अज्ञान है। बालक के स्वभाव और प्रकृति को हम जानते ही नहीं, समझते ही नहीं। हमें पता ही नहीं होता कि बालक अच्छा-बुरा जो कुछ भी करता है, उसका असली कारण क्या है? इसलिये बालक जब कोई ऐसा काम करता है जो हमें अच्छा नहीं लगता, तो हम उसे पीट देते हैं। अगर हम ध्यानपूर्वक बालक के अपराधों के कारणों पर विचार करें तो हमें अपना ही कसूर दिखाई देगा। कितने ही अपराध ऐसे होते हैं जो अपराध कहे जाने पर भी अपराध नहीं होते। हमारी कुदृष्टि ही उन्हें अपराध का रूप दे देती है; राई का पहाड़ बना देती है। मान लीजिये

कि कोई बालक किसी की चीज चुरा कर खा जाता है तो कारण की खोज करने से पता चलता है कि गरीबी के कारण घर पर उसे भर पेट भोजन नहीं मिलता, इसलिये वह दूसरे का खाना खा जाता है। ऐसी हालत में बालक का क्या कसूर है ? उसे सजा देने का हमें क्या अधिकार है ? सजा तो उस समाज या सरकार को मिलनी चाहिये, जो गरीबी को फलने फूलने देती है। सजा उन माता-पिता को मिलनी चाहिये, जो बालक का पालन-पोषण करने में असमर्थ होने पर भी बालक को पैदा करते हैं।

## सजा से अपार हानि

सजा से बालक को अकथनीय हानि होती है। सजा से बालक चालाकी और धोखेबाजी सीखता है। झूठ बोलने पर भी सच्चा बना रहने और चोरी करने पर भी पकड़ में न आने की कला सीखता है। सजा से बालक की इच्छाशक्ति या तो नष्ट हो जाती है या और दृढ़ हो जाती है। इच्छाशक्ति के नष्ट हो जाने से बालक बिलकुल बेकार हो जाता है। जीवन में कोई काम करने के योग्य नहीं रहता। इसके विपरीत यदि इच्छाशक्ति दृढ़ हो जाती है तो दिल खोल कर बुराई करने लगता है; किसी की एक नहीं सुनता।

अपराध करने पर जब बालक को सजा मिल जाती है तो वह कसूर के बारे में सोचना ही छोड़ देता है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों सजा मिलती है, अपराध की जड़ जमती जाती है और बालक दुर्गुणों की खान बन जाता है। सजा से माता-पिता और बालक के सम्बन्ध में कटुता आ जाती है। बालक माता-पिता से विमुख रहने लगता है, घृणा करने लगता है, और बड़ा होने पर उनका कट्टर शत्रु* बन जाता है। उनसे

* ललित पिता की बेतें, लात और घूँसे खा-खाकर आज उनका कट्टर शत्रु बन गया है। वह उन्हें फूटी आँखों नहीं देख सकता। उनसे बदला लेने के लिये, बदनाम

कोई वास्ता नहीं रखता। उन्हें बदनाम करने में उसे बड़ा मजा आता है। सजा देने वाले शिक्षक से भी बालक ऐसा ही बर्ताव करता है।

सजा से बालक अनेक रोगों और विकृतियों का शिकार बन जाता है। पिटने वाला बालक ही बड़ा होकर पीटने वाला बन जाता है, जिसके फलस्वरूप सजा का जहर पीढ़ी-दर-पीढ़ी फैलता जाता है। सजा ने ही दुनियाँ को हिंसक बनाया है।

सजा से बालक के अन्दर डर बैठ जाता है। रात को उसे गहरी नींद नहीं आती, डरावने स्वप्न आते रहते हैं। वह डरपोक, कायर, नामर्द, दब्बू और चिड़चिड़ा बन जाता है। उसकी बुद्धि को जंग लग जाता है।

पिटने वाला बालक क्रूरता और निर्दयता को ही अच्छा समझने लगता है। स्नेह और सहानुभूति का उसमें नाम तक नहीं रहता। अपने से छोटों और निर्बलों को खूब मारता है। सचमुच सजा बालक को राक्षस बना देती है।

## उन्नत देशों में बालक को सजा देना अपराध

उन्नत देशों में बालक को सजा देना भयङ्कर अपराध समझा जाता है। यही वजह है कि वहाँ वीर और शेर बच्चे पैदा होते हैं। अगर हम भी अपने देश में अनेक गान्धी, अनेक जवाहर, अनेक अब्दुल गफ्फार खाँ, अनेक टैगोर, अनेक कलाकार, अनेक सत्याग्रही, अनेक वैज्ञानिक आदि देखना चाहते हैं, तो हमें सजा को अपने घरों और शालाओं से सदा के लिये बाहर निकाल देना होगा। सजा के रहते यह देश पनप नहीं

---

करने के लिये वह नयी-नयी और विचित्र योजनाएँ बनाता रहता है। एक दिन तो वह उनसे इतना बिगड़ा कि जोर-जोर से उनके गाल पर दो चाँटे लगा दिये और साथ ही बेंत मारने की धमकी दी।

—लेखक

सकेगा। सजा गुलामी की जड़ों को सींचती है, उसमें पानी और खाद देती है। सजा के रहते कोई अहिंसक नहीं बन सकता। सजा के रहते साम्राज्यों का अन्त नहीं हो सकता। सजा के रहते 'शाहियों' और 'वादों' का खात्मा नहीं हो सकता। सज़ा के रहते ऐसे समाज का निर्माण नहीं हो सकता, जहाँ न कोई शासक होगा, और न कोई शासित। ऐसी सुन्दर दुनियाँ का निर्माण करने के लिये बालक को सजा देना क़ानूनन बन्द होना चाहिये। बालक को सजा देना अक्षम्य अपराध समझा जाना चाहिये।

## सजा न देने का मतलब मनमानी करने की छूट नहीं

लेकिन सजा न देने का यह मतलब हर्गिज नहीं है कि गलती, अपराध या मनमानी करने पर बालक को कुछ कहा ही न जाय, उसे बिलकुल खुला ही छोड़ दिया जाय। सजा न देने का यह अर्थ भी नहीं है कि बालक किसी को मारने लगे, या जान बूझ कर तोड़-फोड़ करने लगे या और कोई अनुचित कार्य करने लगे, तो उसकी इन बातों पर पर्दा डाला जाये। सजा न देने का मतलब तो यह है कि बालक के अपराधों, भूलों, बुरी आदतों आदि समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए हल करना चाहिये।

## सजा से छुटकारा पाने के कुछ उपाय

इस भयंकर रोग से छुटकारा पाने के लिए आपको कुछ बातों का ध्यान रखना होगा।

सबसे पहले बालक को बालक ही समझें, अपने जैसा बूढ़ा नहीं। आपकी दृष्टि में और बालक की दृष्टि में जमीन आसमान का फ़र्क है। बालक से यह आशा न रखें कि वह आपकी सारी बातों को चुपचाप मान लेगा। अपने को बड़ा और बालक को छोटा न समझें। बालक

के साथ व्यवहार करते समय अपने बचपन का जमाना न भूलें। बालक से कभी ऐसा काम करने के लिए न कहें, जिसे वह न कर सके। बालक जब अपने काम में मग्न हो तो उस वक्त उसे कुछ न कहें, कोई आज्ञा न दें।

बालक के आस-पास ऐसी व्यवस्था करदें जिससे उसे गलती करने का, आपको तंग करने का, आपकी चीजों को अस्त-व्यस्त करने का मौका ही न रहे।

सजा देने से पहले खूब सोच लें, बालक के हेतु को समझ लें, बालक की भीगी हुई कमीज को देखकर चाँटा लगाने से पहले कमीज के भीगने का असली कारण मालूम करलें। अपना गिलास आप भरने में कमीज पर पानी गिर गया है, तो क्या गजब हो गया? आप क्यों नाराज होते हैं उस पर?

बालक को छोटा समझ कर उसका अपमान हर्गिज न करें। आप की तरह उसके भी अधिकार हैं। आप उन्हें क्यों नहीं स्वीकार करते? जब आप बालक को हेय समझते हैं तभी तो सजा देते हैं।

बालक के साथ व्यवहार करने में लापरवाही न दिखाएँ! एक दिन एक काम के लिए बालक को सजा देना, और दूसरे दिन उसी काम को करते देखकर हँस देना बहुत बुरा है। आपके इस असंगत व्यवहार से बालक असमंजस में पड़ जाता है। उसे अपनी भूल का पता नहीं लगता। वह आप में विश्वास करना छोड़ देता है।

बालक से जो कुछ कहना या कराना हो उसे बिलकुल स्पष्ट शब्दों में उसके सामने रखें। शक होने पर पूछ कर तसल्ली कर लें कि बालक ने आपकी बात को अच्छी तरह समझ लिया या नहीं। कई बार ऐसा होता है कि बालक आपकी बात को भली भाँति समझता नहीं, और आप बिना सोचे समझे उसे दो-चार चपत रसीद कर देते हैं।

बालक के गलती करने पर नाराज न हों, बार-बार गलती करके बालक जो कुछ सीखता है वह उसे कभी भूलता नहीं। अपनी गलती आप ठीक करने में बालक को जो आनन्द आता है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिए आप जल्दी न करें, सजा का सवाल ही नहीं उठेगा।

बालक के पथ-प्रदर्शक बनने के बजाय आप बालक को अपना पथ प्रदर्शक समझें। फिर उस पर हाथ उठाने का आपको खयाल ही न आयेगा। पाँच साल की अमिता रानी अपने पिता को कितनी ही बार सही रास्ता दिखाती है। एक दिन उसने अपने पिता से कहा—'आप नाराज क्यों होते हैं? जो कुछ कहना है शान्ति से कहिए, धीरे से कहिए।" पिता सँभल गये। अमिता रानी भी खुश हुई और पिता भी। सभी माता-पिता ऐसा करें तो कितना अच्छा हो?

सचेत और सतर्क रहने पर भी पुरानी आदत के कारण अगर आप बालक को सजा दे भी दें, तो उसके लिए बालक के सामने अपना दुःख अवश्य प्रकट करें। इससे बालक को सन्तोष होगा, वह अपने दुःख को भूल जाएगा। आप अपनी गलती को महसूस करेंगे और फिर वही गलती आप से आसानी से नहीं होगी। इस प्रकार सजा देने की आदत छूट जायगी।

सजा देने के बजाय बालक की आत्मा से प्रेम करना सीखें, प्रेम जादू का असर रखता है। वह कभी असफल नहीं होता, हो ही नहीं सकता। प्रेम का प्रयोग करके मैंने असाध्य और गये गुजरे समझे जाने वाले कितने ही लड़कों को ठीक किया है। दुःख तो यह है कि बालक के दिल में घुसने का हम प्रयत्न ही नहीं करते। झट सजा देने के लिए तैयार हो जाते हैं।*

---

* सजा के बारे में विस्तृत जानकारी के लिये लेखक की "सब बुराइयों की मां—सजा" पढ़िए।

## इनाम के प्रति अंध श्रद्धा

सजा की तरह इनाम भी बालक को हानि पहुँचाता है। यह सीधा आत्मा का हनन करता है। फिर भी इनाम आज हमारे जीवन का अंग बन गया है। इनाम पर लोगों की इतनी अन्ध श्रद्धा है कि वे इसके खिलाफ कुछ सुनना गवारा नहीं करते। वे मानते हैं कि इनाम के बिना काम करने में जोश नहीं आता, उत्साह पैदा नहीं होता। वे कहते हैं कि वाह-वाह, तारीफ और इनाम के बिना काम करने में मजा ही नहीं आता। उनकी यह धारणा बिलकुल मिथ्या है। अगर वे बाल-जीवन के रहस्य को जरा भी जानते होते, तो इनाम की भूलकर भी हिमायत न करते।

## लालच देकर काम कराना स्वाभाविक वृत्ति की हत्या

काम बालक के लिये प्राण वायु है। एटम-बम भी बालक को काम से नहीं डिगा सकता। काम के बिना बालक तड़प-तड़प कर जान दे देता है। एक तरफ काम हो और दूसरी तरफ दुनियाँ की सारी दौलत हो, बढ़िया से बढ़िया मिठाइयाँ रखी हों, सुन्दर से सुन्दर कपड़े पड़े हों, तो बालक काम को पसन्द करेगा, दौलत और मिठाइयों और कपड़ों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा। इसलिए काम के लिये बालक को इनाम की लालच देना उसकी स्वाभाविक वृत्ति की हत्या करना है।

## इनाम से हानि

इनाम के चक्कर में पड़कर बालक कर्मयोगी न रह कर दिखावे के लिए काम करने लगता है। उसकी दशा उस शराबी की सी हो जाती है जो शराब के बिना कुछ कर ही नहीं सकता, एक कदम आगे बढ़ नहीं सकता। इनाम एक प्रकार की रिश्वत है। इनाम बालक को लालची और स्वार्थी बना देता है। इनाम बालक में ईर्ष्या, द्वेष पैदा करता है।

छोटे-बड़े की भावना जगाता है। इनाम बालक को चोरी और झूठ बोलना सिखाता है, तरह-तरह के वहमों में फँसाता है। इनाम के पीछे पागल हो जाने वाला बालक केवल किताबी कीड़ा बन जाता है, और सब बातों में बिलकुल कोरा रह जाता है। बड़ा हो जाने पर नौकरी के सिवा और किसी काम के काबिल नहीं रहता। समाज, देश और विश्व के लिए काम करने की उसमें योग्यता ही पैदा नहीं होती। इनाम बालक की तुच्छ शक्तियों को जगाता है, और उच्च वृत्तियों को दबाता है। काम के लिए काम करने में जो असीम आनन्द मिलता है, उससे वह वञ्चित रह जाता है।

## होड़ और उससे होने वाली हानि

होड़ ( प्रतियोगिता ) का भी यही हाल है। होड़ बालक को आवश्यकता से अधिक काम करने के लिए मजबूर करती है। इसका नतीजा यह होता है कि बालक का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। होड़ से बालक में हार-जीत की भावना पैदा होती है। होड़ बालक को घुड़दौड़ के घोड़े के समान बना देती है। घुड़दौड़ का घोड़ा घुड़दौड़ के मैदान में तो खूब जौहर दिखाता है, लेकिन घुड़दौड़ के मैदानों से बाहर निकल कर उसके लिए दौड़ना तो दर किनार, एक कदम चलना भी दूभर हो जाता है। वह तमाम दिन खूँटे से बँधे रहना ही पसन्द करता है। होड़ बालक को दम्भी और संकीर्ण बना देती है। उसकी स्वाभाविकता को नष्ट कर देती है। होड़ बालक के शरीर या मन के किसी अंग का विकास तो खूब करती है, लेकिन उसके सर्वतोमुखी विकास में बड़ी भारी बाधा डालती है। होड़ बालक में सहयोग की भावना पैदा नहीं होने देती, जो उसके और समाज के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। होड़ से बालक में दृढ़ता और स्थिरता नहीं आने पाती। खरगोश और कछुए की कहानी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। होड़ ईर्ष्या द्वेष को भड़काती है।

आज जो नित नये संहारक अस्त्र-शस्त्र निकल रहे हैं, वे सब इस सत्यानाशिनी होड़ के ही नतीजे हैं।

## सारांश

रुचिकर काम बालक के लिये अमृत है, जीवन ध्येय है। सजा, इनाम और होड़ काम रूपी अमृत के प्याले में जहर घोलते हैं। बालक के जीवन को नशीला और विषैला बना देते हैं, जीवन ध्येय से विमुख करते हैं। सजा, इनाम और होड़ के जाल में फँसकर बालक का जीवन डाँवाडोल हो जाता है। वह अपने असली रूप को भूल जाता है।

———

# बालक के लिये कहानियाँ

मानव-जीवन में कहानियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष कहानियों में दिलचस्पी रखते हैं। यही कारण है कि कहानी-साहित्य दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है और कहानी-कला का दिनोंदिन विकास होता जा रहा है। कहानी-साहित्य की विशेषता यह है कि इसके द्वारा गंभीरतम विषयों को सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है। इसीलिए प्राचीन काल के ऋषि-मुनि और संत महात्मा कहानियों द्वारा जनता में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे और उसकी समस्याओं का समाधान करते थे।

## बाल-जीवन में कहानियों का महत्त्व

बाल-जीवन में कहानियों का विशेष महत्त्व है। कहानियाँ बालक के जीवन निर्माण में बड़ी सहायक सिद्ध होती हैं। कहानियों को सुनने के लिये बालक बड़े उत्सुक व लालायित रहते हैं। कहानियाँ सुनते-सुनते वे कभी थकते नहीं हैं, ऊबते नहीं हैं। कहानी सुनने में उन्हें बड़ा आनन्द आता है। कहानी सुनने में वे इतने तल्लीन हो जाते हैं कि खाने-पीने तक की उन्हें सुध-बुध नहीं रहती। कहानी सुनते समय उनकी एकाग्रता देखते ही बनता है। ऐसा आकर्षण होता है, बालकों को कहानी के लिए।

अस्थिर, चंचल और जटिल बालकों को स्थिर, शान्त, एकाग्र, संतुलित और व्यवस्थित बनाने में कहानियाँ आश्चर्यजनक परिणाम दिखाती हैं। कहानियाँ सुनने में बालक इतने मस्त हो जाते हैं कि वे अपनी अस्थिरता, चंचलता और जटिलता को बिलकुल भूल जाते हैं। थकान उतारने, दुःख भुलाने और रोते बालकों को हँसाने में कहानियाँ रामबाण का काम करती

है । इसके अलावा मानसिक व भावनात्मक तनाव को दूर करने में कहानियाँ बेजोड़ सिद्ध होती हैं ।

पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों की कहानियाँ सुनाकर उनके प्रति बालकों के अन्दर प्रेम पैदा किया जा सकता है, आत्मीयता का सञ्चार किया जा सकता है, जिससे बालक उनको अपने जैसा समझने लगते हैं । उनकी सार-संभाल रखने में बालकों को बड़ा आनन्द आता है ।

कहानियाँ शिक्षण का सर्वोत्तम व सरलतम साधन हैं । अतः कहानियों द्वारा सभी विषयों का ज्ञान बड़ी आसानी से बालकों को दिया जा सकता है । कहानियाँ सुनते-सुनते बालक सभी विषयों को अच्छी तरह सीख जाते हैं । उनको इस बात का पता तक नहीं चलता कि वे कुछ पढ़ रहे हैं या सीख रहे हैं ।

कहानियों द्वारा सम्पूर्ण संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान बड़ी आसानी से बालकों को कराया जा सकता है ।

कहानियाँ सुनते-सुनते बालक शुद्ध उच्चारण के साथ भाषा पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं ; जिसके फलस्वरूप उन्हें अपने भावों को व्यक्त करने में बड़ी सहायता मिलती है । यही कारण है कि बालघर के बालक अपने भावों और विचारों को प्रकट करने में जरा भी नहीं हिचकते ।

कहानियों द्वारा बालक कल्पना-शक्ति, स्मरण-शक्ति व नाट्यवृत्ति का विकास कर सकते हैं ।

कहानियों द्वारा बालकों को जीवनोपयोगी जानकारी बिना किसी प्रकार की कठिनाई के दी जा सकती है, जिसकी कि उन्हें जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये नितान्त आवश्यकता है ।

कहानियों द्वारा बालकों को सामाजिकता, नागरिकता, स्वच्छता व व्यवस्था का ज्ञान कराया जा सकता है, जिससे उनमें अच्छी आदतों का निर्माण हो सकता है ।

कहानियाँ सुनते-सुनते बालक व्यवस्थित ढंग से अपने विचार रखने की कला सीख जाते हैं, जो उनके भावी विकास के लिये नितान्त आवश्यक है।

कहानियों द्वारा बालकों में साहस, वीरता, स्नेह, समानता और आशा का सञ्चार किया जा सकता है, जिसका आज के घरों के वातावरण में सर्वथा अभाव है।

कहानियों द्वारा बालकों में जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण पैदा किया जा सकता है, जिसकी आज के युग में अत्यन्त आवश्यकता है। सही दृष्टिकोण न होने के कारण ही आज दुनिया भटक रही है, अन्धकार में पड़ी है।

कहानियों का ठीक चुनाव किया जाए और ठीक ढंग से उनको कहा जाए तो वे आनन्द, वैज्ञानिक मनोरञ्जन तथा हर प्रकार की ज्ञान-प्राप्ति का साधन बन सकती हैं।

## कहानियाँ कैसी हों ?

कहानियों का चुनाव करना बड़ी टेढ़ी खीर है। कहानियों के चुनाव पर ही कहानियों की उपयोगिता निर्भर है। चुनाव ठीक न होने पर कहानियाँ लाभ के बजाय हानि अधिक पहुँचाती हैं। इसलिए कहानियों का चुनाव करते समय बड़ी सतर्कता से काम लेना चाहिए।

बालक बहुत छोटा होता है, इसलिये उसका अनुभव और ज्ञान बिलकुल सीमित होता है। लेकिन इतना होने पर भी वह अपने आस-पास के वातावरण को और आसपास की चीजों को जल्दी से जल्दी समझना चाहता है, जानना चाहता है। अतः बालकों की इस जिज्ञासा को और उनकी आयु को दृष्टि में रखते हुए कहानियों का चुनाव करना चाहिये। लेकिन आयु और ज्ञान में वृद्धि हो जाने पर कहानियों के चुनाव में परि-

वर्तन करते रहना चाहिये। पाठकों के लाभार्थ बालोपयोगी कहानियों की सूची नीचे दी जा रही है ताकि कहानियों के चुनाव में उन्हें सुविधा हो।

( १ ) तुकबन्दी की कहानियाँ। इन कहानियों को बालक बहुत पसन्द करते हैं और बार-बार सुनते हैं।

( २ ) बालक के दैनिक जीवन से मेल खाने वाली कहानियाँ।

( ३ ) पूर्वसंचित ज्ञान में वृद्धि करने वाली कहानियाँ।

( ४ ) सच्ची घटनाओं व तथ्यों पर आधारित कहानियाँ।

( ५ ) पारिवारिक कहानियाँ, जिनमें स्नेह व सुरक्षा की भावना हो।

( ६ ) पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, कीड़े-मकोड़ों की तथा पास-पड़ोस में पायी जाने वाली अन्य चीजों की कहानियाँ।

( ७ ) आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नदी-नाले, जंगल, पहाड़, हवा, पानी, पृथ्वी आदि की कहानियाँ।

( ८ ) मेलों, त्यौहारों, उत्सवों की कहानियाँ। ये कहानियाँ आवश्यक परिवर्तन के साथ नये दृष्टिकोण से कही जानी चाहियें तथा किसी भी हालत में मिथ्या परम्पराओं एवं रूढ़ियों का समर्थन इनमें नहीं करना चाहिये।

( ९ ) सामाजिकता, नागरिकता, स्वच्छता व व्यवस्था आदि का सञ्चार करने वाली कहानियाँ।

( १० ) वीरता और साहस पैदा करने वाली कहानियाँ।

( ११ ) किसानों, मजदूरों, गरीबों, कारीगरों व पेशेवरों की कहानियाँ।

( १२ ) विनोद और चतुराई की कहानियाँ जिनमें अश्लीलता रूढ़ियों और अंधविश्वासों का पोषण जरा भी न हो।

( १३ ) देश-देश के बालकों की कहानियाँ।

( १४ ) सत्य, अहिंसा व श्रमनिष्ठा से सम्बन्धित कहानियाँ।

( १५ ) निर्भयता, विनम्रता, स्वाभिमान व स्वावलम्बन पैदा करने वाली कहानियाँ।

( १६ ) आविष्कारकों तथा उनके आविष्कारों और मानव-विकास की कहानियाँ ।

( १७ ) हृदय और मन को बलवान बनाने वाली कहानियाँ।

( १८ ) कठिनाइयों और कष्टों के समय धैर्य रखना सिखाने वाली कहानियाँ।

( १९ ) कवियों, लेखकों, कलाकारों और विचारकों की कहानियाँ।

( २० ) रोगियों, दुःखियों, असहायों के प्रति सहानुभूति पैदा करने वाली कहानियाँ।

( २१ ) अपना काम अपने आप करना सिखाने वाली कहानियाँ।

( २२ ) विश्व बन्धुत्व व सर्वोदय की भावना जगाने वाली कहानियाँ।

( २३ ) विज्ञान की तथा नये मूल्यों का समर्थन करने वाली कहानियाँ।

( २४ ) सादा खानपान और सादा रहन-सहन सिखाने वाली कहानियाँ।

## कहानियाँ कैसी न हों ?

सच्ची, मौलिक और वैज्ञानिक कहानियाँ चरित्र व व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती हैं, साहस और वीरता का पाठ पढ़ाती हैं तथा नई खोज करने की प्रेरणा देती हैं। इसके विपरीत झूठी, बनावटी और कपोल-कल्पित कहानियाँ सुनने वालों में अनेक विकृतियों का बीजारोपण करती



बालक पढ़ने में व्यस्त है



बालक झूल रहा है

हैं तथा सत्पथ से विमुख करती हैं। इसलिए कहानियों का चुनाव करते समय बड़ी सावधानी, विवेक और सूझबूझ से काम लेना चाहिए क्योंकि जो संस्कार बाल्यावस्था में पड़ जाते हैं, उनको बड़ी उम्र में दूर करना कठिन ही नहीं असंभव हो जाता है। आज चारों ओर अराजकता, भ्रष्टाचार, गैरजिम्मेवारी और अनुशासनहीनता के जो घिनौने दृश्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उनके लिये हमारा दूषित कहानी साहित्य भी बहुत हद तक जिम्मेवार है। अतः कहानियों के चुनाव करने में हमें पूर्णतया सचेत रहना चाहिये। बाजार में आज जो घासलेटी कहानियों की पुस्तकें व पत्र-पत्रिकाएँ मिलती हैं, उनमें से अधिकांश जला देने के लायक हैं। इसलिए पाठकों की सुविधा के लिए उन कहानियों की एक सूची नीचे दी जा रही है, जो बालकों को भूलकर भी नहीं सुनानी चाहियें।

( १ ) परियों की तथा अन्य अघटित, असंभव और मनगढ़ंत कहानियाँ।

इस प्रकार की कहानियाँ सुनने या पढ़ने से बालक तरंगी बन जाते हैं, कल्पना जगत् में विचरण करने लगते हैं, दिन में भी स्वप्न देखने लगते हैं। ऐसे बालकों का मन किसी ठोस काम में नहीं लगता। वे किसी भी प्रवृत्ति को एकाग्रतापूर्वक नहीं कर सकते। वे दिन-रात इधर-उधर भटकते रहते हैं। परियों की कहानियाँ बालकों में भय, अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा की नींव डालती हैं और अनिश्चितता पैदा करती हैं। बात यह है कि बचपन में बालकों को जो कुछ भी कहा जाता है, उसे वे सच मान लेते हैं और कोशिश करने पर भी बड़ी उम्र में वे अपने पुराने संस्कारों से छुटकारा पाने में असमर्थ हो जाते हैं। मैं कितने ही ऐसे बालकों को जानता हूँ, जो कपोलकल्पित और झूठी कहानियों के चंगुल में फँस कर अपनी प्रतिभा से हाथ धो बैठे हैं।

इतना होने पर भी बहुत से लोगों का यह ख्याल है कि परियों आदि की झूठी कहानियों से बालकों की कल्पनाशक्ति बढ़ती है और उनका जीवन सुखमय बनता है। ऐसी हालत में बालकों को इन कहानियों से वञ्चित कर दिया जायगा तो उनका विकास रुक जायगा और जीवन नीरस हो जायगा। मगर इस मिथ्या धारणा में कोई तथ्य नहीं है। हम निकेतन में बालकों को सच्ची और वैज्ञानिक कहानियाँ सुनाते हैं जिन्हें वे बड़े चाव से बारबार सुनने का आग्रह करते हैं और मनगढंत तथा कपोलकल्पित झूठी कहानियों की कतई कोई माँग नहीं करते। इतना ही नहीं, बल्कि घर पर उनके माता-पिता उन्हें इस प्रकार की रद्दी कहानियाँ सुनाते हैं तो बालक तुरन्त उन्हें टोक देते हैं कि आप हमें झूठी कहानियाँ क्यों सुना रहे हैं! इसी प्रकार एक बार एक नया बालक घर से झूठी कहानी सुन आया और अपने साथियों को सुनाने लगा जिसे उन्होंने सुनने से इन्कार कर दिया जिसके फलस्वरूप उस बालक को अपनी कहानी बीच में बन्द करनी पड़ी।

बात दरअसल यह है कि घर और शाला में चूँकि बालकों को प्रायः सच्ची और वैज्ञानिक कहानियाँ नहीं सुनाई जाती हैं, इसलिए वे कपोल-कल्पित कहानियाँ सुनने के आदी हो गये हैं। लेकिन इसका मतलब यह हर्गिज नहीं निकालना चाहिये कि बालक सच्ची कहानियों में रस नहीं लेते हैं। आप बालकों को रोचक ढंग से सरल भाषा में सच्ची कहानियाँ सुनाइये और फिर देखिए कि वे कितने उत्साह और रुचि से उन्हें सुनते हैं। इसलिये मेरा नम्र निवेदन है कि छोटे बालकों को भूल कर भी झूठी और कपोल कल्पितकहानियाँ नहीं सुनानी चाहिएं और न ही इस प्रकार की कहानियों की किताबें उन्हें देनी चाहिए।

साहित्य की दृष्टि से इस प्रकार की कहानियों का कितना ही महत्त्व क्यों न हो, लेकिन सत्य और वास्तविकता की दृष्टि से वे किसी भी काम की नहीं हैं। इसलिए बालकों को ऐसी कहानियों से दूर रखना चाहिये।

( २ ) पौराणिक व दन्तकथाएँ। ऐसी कथाएँ भी बालकों को नहीं सुनानी चाहिएं क्योंकि इनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

( ३ ) भूतों-प्रेतों, चोर-डाकुओं, मारकाट व लड़ाई-झगड़े की कहानियाँ। ऐसी कहानियों से बालकों में भय और हिंसावृत्ति का जन्म होता है। इसलिए भय और कायरता का संस्कार करने वाली कहानियाँ बच्चों से नहीं कहनी चाहिये।

( ४ ) जादू-टोनों, यंत्र-मंत्र-तंत्रों, रूढ़ियों, मिथ्या परम्पराओं व अन्धविश्वासों से सम्बन्धित कहानियाँ। ऐसी कहानियों से बालक कुरूढ़ियों और अन्धविश्वासों के गुलाम बन जाते हैं और जीवन भर इनके चंगुल से छुटकारा नहीं पाते।

( ५ ) स्वर्ग का लोभ और नरक का भय पैदा करने वाली कहानियाँ। इनसे बालकों में कर्त्तव्य-निष्ठा नहीं आती। भय और लोभ से प्रेरित होकर वे किसी भी अच्छे काम को करते हैं; लेकिन लोभ और भय के मिटते ही वे शुभ कार्य करना छोड़ देते हैं।

( ६ ) साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, शोषणवाद, अधिनायकवाद आदि वादों को पुष्ट करने वाली कहानियाँ। ऐसी कहानियों से बालक घातक वादों के शिकार बनते हैं, जिससे वे स्वतंत्र रूप से सही नहीं सोच सकते।

( ७ ) निराशापूर्ण कहानियाँ—दुर्जन मौज करते हैं और सज्जन दुःख उठाते हैं, बेईमान गुलछर्रे उड़ाते हैं और ईमानदार भूखों मरते हैं; आदि निराशा से भरी हुई, उलटे परिणाम बताने वाली कहानियाँ बालकों को हर्गिज नहीं सुनानी चाहियें।

( ८ ) ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि बढ़ाने वाली कहानियाँ।

( ९ ) लोभ-लालच व स्वार्थ वृत्ति का पोषण करने वाली कहानियाँ।

( १० ) साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता, विषमता, संकीर्णता, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े व तेरे-मेरे की भावनाएँ पैदा करने वाली कहानियाँ। ऐसी कहानियों से बालक संकीर्ण और स्वार्थी बनते हैं।

( ११ ) एकता, भ्रातृत्त्व और सहयोग की भावना को भंग करने वाली कहानियाँ।

( १२ ) धोखेबाजी, चालबाजी, धूर्तता, मक्कारी तथा जासूसी सिखाने वाली कहानियाँ। जानवरों की बहुत सी कहानियाँ इसी श्रेणी में आती हैं, जो बालकों को कदापि नहीं सुनानी चाहिए।

( १३ ) अश्लील हँसी-मजाक की तथा विकार पैदा करने वाली कहानियाँ।

( १४ ) उपदेश-प्रधान कहानियाँ—ऐसी कहानियों से बालक बड़े होकर या तो नीति व धर्म का विरोध करते हैं या ढोंग रचते हैं, या फिर दम्भी बन जाते हैं। धर्म व नैतिकता सिखाने के लिए उपदेश की नहीं, बल्कि नैतिक वातावरण बनाने की जरूरत है। बालक अनुकरणशील होते हैं। वे जैसे वातावरण में रहते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। इसलिये बालकों को नीतिमान बनाना है तो पहले बड़ों को स्वयं नीतिमान बनना चाहिये। इसके अलावा 'यह करो, वह मत करो' आदि आदेश देने वाली कहानियाँ भी बच्चों को नहीं सुनानी चाहियें।

## कहानी कहने वालों के लिये कुछ सुझाव

कहानी कहना कोई सरल काम नहीं है। कहानी एक कला है। कहानी वही कह सकता है, जो कला के रहस्य को जानता और समझता है। कहानी कहने वालों को निम्न बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए :—

( १ ) कहानी पूरी याद होनी चाहिए। कहानी कहते-कहते बीच-बीच में अटक जाने से कहानी का आनन्द नष्ट हो जाता है।

( २ ) कहानी कहते समय इस ढंग से बैठना चाहिए कि प्रत्येक बालक आपको, आपके हाव-भाव को, शब्द-उच्चारण के समय आपके मुख की हिलन-डुलन को भली-भाँति देख सके।

( ३ ) बालकों की अवस्था के अनुसार कहानी छोटी रोचक, उसकी भाषा सरल व सुबोध, उच्चारण स्पष्ट, शब्दों का चुनाव उपयुक्त और शैली मनोमोहक होनी चाहिए।

( ४ ) कहानी हाव-भाव व उतार-चढ़ाव के साथ धीरे-धीरे स्वभाविक ढंग से कहनी चाहिए जिससे प्रत्येक बालक कहानी को अच्छी तरह सुन सके।

( ५ ) कहानी में आवश्यकता से अधिक अभिनय तथा विषयान्तर नहीं होना चाहिए। यथासम्भव हाथ-पैर आदि की सहायता बिना आवाज के द्वारा ही भावों को व्यक्त करने की कला आनी चाहिए तथा अभिनय वृत्ति पर अंकुश रखने की शक्ति होनी चाहिए क्योंकि कहानी में भाव मुख्य है और अभिनय गौण।

( ६ ) कहानी कहते समय बालक की तरह कहानी में तल्लीन व घुलमिल जाना चाहिए; अन्यथा बालकों को कहानी सुनने में कुछ आनन्द नहीं आएगा।

( ७ ) कहानी कहते समय कहानी में निहित उसके मूल विचार को सदा आँखों के सामने रखना चाहिए तथा इधर-उधर की बातों में बह नहीं जाना चाहिए।

( ८ ) कहानी कहते समय यह देखते रहना चाहिए कि बालक कहानी ध्यान-पूर्वक सुन रहे हैं या नहीं।

( ९ ) कहानी कहते समय बीच-बीच में सवाल पूछ कर अव्यवस्था व अशान्ति नहीं फैलानी चाहिए। हाँ, यदि कोई बालक कहानी के बीच में कोई सवाल पूछ बैठे तो उसका जवाब अवश्य देना चाहिए।

( १० ) कहानी सुनाते समय चित्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे बालकों की एकाग्रता भंग होती है।

( ११ ) कहानी सुनाने के बाद तुरन्त ही बालकों से कहानी सुनाने के लिये नहीं कहना चाहिए। बीज डालते ही फल खाने की इच्छा सर्वथा अनुचित है।

( १२ ) कहानी का सार हर्गिज नहीं निकलवाना चाहिएं।

( १३ ) एक ही कहानी में बहुत सी बातें नहीं ठूँसनी चाहिए तथा कहानी को आडम्बर से सदा मुक्त रखना चाहिए।

( १४ ) जिन कहानियों को बालक अधिक पसन्द करते हैं, उनके नाम नोट कर लेने चाहिए।

( १५ ) सुन्दर कहानियों का संग्रह अपने पास रखना चाहिए।

( १६ ) कहानी द्वारा विविध विज्ञानों का संक्षिप्त ज्ञान करवाना चाहिए।

( १७ ) कभी-कभी कहानी-सभा का आयोजन भी करना चाहिए, जिसमें बालक अपनी-अपनी कहानियाँ सुनाएँ। जब बालक कहानी सुनाने लगे तो उसे बीच में टोकना नहीं चाहिए। कुछ बताना हो तो बाद में बताया जा सकता है।

( १८ ) कोई बालक कहानी सुनना न चाहे तो उसे सुनने के लिए मजबूर नहीं करना चाहिए।

( १९ ) बालकों की मनपसन्द कहानी को बार-बार कहना चाहिए।

( २० ) प्रसंग आने तथा आवश्यकता होने पर ही कहानी सुनानी चाहिए।

( २१ ) अन्य विषयों की तरह कहानी कहने का समय निश्चित नहीं करना चाहिए।

( २२ ) बालकों को स्वयं कहानियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। रास्ते में देखी हुई चीजों, घटनाओं, अपने कमरे, अपनी

गाय, अपने भाई, अपने दैनिक जीवन की कहानी बालक आसानी से सुना सकते हैं।

( २३ ) सुनाई हुई कहानियों का अभिनय करवाना चाहिए क्योंकि अभिनय करने में बालकों को बड़ा मजा आता है।

( २४ ) किसी भी हालत में कहनी में बनावट या अस्वाभाविकता नहीं आने देनी चाहिए।

## चेतावनी

कहानियों का सदुपयोग जहाँ बालक के विकास में अत्यन्त सहायक होता है, उसकी छिपी हुई शक्तियों को विकसित करने में कमाल करता है; वहाँ कहानियों का दुरुपयोग बालक को कल्पनातीत हानि पहुँचाता है, उसके विकास को अवरुद्ध करता है। इसलिए बालक के हित और विकास को दृष्टि में रखते हुए चेतावनी देना बड़ा ही जरूरी है।

सबसे पहली बात इस सम्बन्ध में यह कहनी है कि कुछेक-बालकों के आग्रह पर जब-तब कहानी कहने के लिए नहीं बैंठ जाना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि बालकों को कहानी सुनने का चस्का नहीं पड़ना चाहिए, जिससे वे गम्भीर और आवश्यक विषयों की उपेक्षा करने लगें। इसलिए यह देखते रहना चाहिए कि कहीं बालकों को कहानी सुनने का व्यसन तो नहीं हो गया है। मैंने देखा है कि कहानियों का चस्का लग जाने पर बालकों का मन और किसी काम में लगता ही नहीं और वे जब-तब कहानियों की माँग करते ही रहते हैं।

तीसरी बात यह है कि प्रसंग आने पर या बालकों में विशेष रुचि होने पर या किसी जटिल समस्या को सरलतापूर्वक समझाने के लिये ही कहानियों का प्रयोग करना चाहिए।

चौथी बात यह है कि बाजार में जो घासलेटी कहानियों की किताबें या पत्रिकाएँ बिकती हैं, उनमें प्रायः अवैज्ञानिक, झूठी और तथ्यहीन

कहानियाँ रहती हैं, उनमें जीवन का कोई सत्य नहीं रहता। इसलिये कोई किताबी कहानी सुनानी हो तो पहले उसे स्वयं पूरा पढ़ जाना चाहिए और बाद में आवश्यक परिवर्तन करके उस कहानी को सुनाना चाहिए। उदाहरण के तौर पर पंचतंत्र, हितोपदेश और ईसप की कहानियों में कुछ कहानियाँ तो उपयोगी और प्रेरणाप्रद हैं; लेकिन कुछेक ऐसी हैं, जो चालाकी का पाठ पढ़ाती हैं। इसलिए ऐसी कहानियाँ सुना कर बालकों में चालाकी का बीजारोपण नहीं करना चाहिए। हमें तो कहानी की प्रत्येक किताब को वास्तविकता और सच्चे ज्ञान की कसौटी पर कस कर देखना है। अगर वह इस कसौटी पर पूरी नहीं उतरती तो वह बालकों के लिए बिलकुल व्यर्थ व हानिकारक है।

पाँचवीं बात यह है कि कहानियों द्वारा हमें बालकों पर अपने विचार लादने की कोशिश हर्गिज नहीं करनी चाहिए। बालक एक स्वतंत्र व्यक्ति है। हमें उसे स्वतंत्र रूप से सोचने और करने का अवसर देना चाहिए।

इस प्रकार कहानियों का चुनाव करते समय हमें बालकों के मानस का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

यदि उपर्युक्त बातों पर ध्यान नहीं दिया गया तो बालकों को कहानियों से लाभ के बजाय हानि ही अधिक होगी।

## लेखकों व प्रकाशकों से निवेदन

जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि आज बाजार में जो तथाकथित बालोपयोगी कहानियों की पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ बिकती हैं वे प्रायः झूठी, मनगढंत और कपोलकल्पित कहानियों से भरी रहती हैं; जिनसे बालकों को जो शारीरिक व मानसिक हानि होती है, उसकी कल्पना करना कठिन है। इसलिए बालहित व बालविकास को दृष्टि में रखते हुए मैं कहानी लेखकों से अनुरोध करता हूँ कि वे ऐसी कहानियों के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलें और ऐसी कहानियाँ लिखना छोड़ दें, जिनके पढ़ने से

बालक अनेक विकृतियों का शिकार बनते हैं तथा झूठ को सच और अवास्तविकता को वास्तविकता समझने लगते हैं।

इसी प्रकार प्रकाशकों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे बालकों के लिए ऐसी पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करना बन्द कर दें जिन्हें पढ़ कर बालक हवा में उड़ने लगते हैं, तरंगी व अस्थिर बनते हैं, भय व अन्धविश्वास के चंगुल में फँसते हैं तथा कोई भी गंभीर काम करने में असमर्थ हो जाते हैं।

बालक को यदि आप मानव-निर्माता समझते हैं तो इतना तो आपको करना ही होगा, करना ही चाहिए।

———

१२

# बाल-गीता

## निराशा में आशा की झलक—बालक

गीता का महत्व हम सब जानते हैं। इसका पाठ करते हैं, कथा सुनते हैं। लेकिन यह सब होते हुए भी गीता हमारे जीवन में ओत-प्रोत नहीं हो पाई है। निःसन्देह गीता को हम समझ नहीं पाये हैं। गीता की झलक हमारे जीवन में दृष्टिगोचर नहीं होती। गीता का महत्त्व अगर हम ठीक-ठीक समझ लेते तो आज हमारी यह दुर्दशा न होती। दरअसल बात यह है कि जीवन का निर्माण, चरित्र का विकास बाल्यावस्था में ही हुआ करता है। बाल्यावस्था के गुजर जाने के बाद केवल किसी किताब के पढ़ने से, चाहे वह कितनी ही महत्वपूर्ण और उपयोगी क्यों न हो, या उपदेश सुनने से जीवन का समुचित विकास नहीं होता, नहीं हो सकता। चूँकि हमारे जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में हमारे विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया, इसलिए हमारी कितनी ही शक्तियाँ नष्ट हो गईं, हमारी बुनियाद बिल्कुल कच्ची रह गई। अब हम कितने ही उपदेश सुनें, कितना ही गीता का पाठ करें, बचपन में पड़े हुए संस्कार हमारा पीछा नहीं छोड़ते, गीता के अनुसार चलने नहीं देते। हजार प्रयत्न करने पर भी वे चीन की दीवार की तरह हमारा रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं, हमें आगे बढ़ने नहीं देते। प्रबल इच्छा रहते हुए भी हम अपने विचारों के अनुसार अपना जीवन नहीं बना सकते। यही कारण है कि आज हम अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार देखते हैं, प्रकाश की एक धुंधली रेखा भी नजर नहीं आती। इस घोर अन्धकार और निराशा में आशा की एक ही किरण दिखाई देती है, और वह है बालक। बालक ही हमारी निराशा को आशा में

बदल सकता है। बालक ही हमारे सामने फैले हुए इस अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर सकता है। बालक ही इस रसातल में पड़ी हुई दुनिया को स्वर्ग बना सकता है। बालक ही गीता के अमर सन्देश को घर-घर में फैला सकता है, केवल कह कर ही नहीं, बल्कि अमल करके। यह अद्‌भुत शक्ति बालक में ही है, बड़ों में नहीं।

## बाल-गीता के अनुसार व्यवहार

जो काम आप नहीं कर सके या कर सकते, बालक बड़ी सुगमता से उसे बात की बात में कर सकता है। यदि आप चाहते हैं कि आपका बालक होनहार बने, गीता के अनुसार जीवन बसर करने वाला बने तो आपको बाल गीता के अनुसार बालक के साथ व्यवहार करना होगा, उसके अनुसार उसका लालन-पालन और विकास करना होगा। अगर आपने ऐसा किया तो मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि आपके बालक का जीवन आप ही आप गीता के सिद्धान्तों के अनुसार ढल जाएगा, गीता की फिलासफी उसके जीवन का अङ्ग बन जाएगी। वह जैसा कहेगा वैसा ही करेगा। वह न किसी का शोषण करेगा और न किसी को अपना शोषण करने देगा ; काम से कभी जी न चुराएगा। वह कभी जटिल ( पेचीदा ) न बनेगा, बुराइयों से कोसों दूर रहेगा। हँसते-खेलते, भागते-दौड़ते अपना सब काम करेगा। किसी प्रकार के अंकुश लगाने या जोश दिलाने की उसे बिल्कुल जरूरत न होगी। वह सच्चा कर्मयोगी बन जाएगा। जीवन की दौड़ में किसी से पीछे न रहेगा।

## बाल-गीता से लाभ

आप यह न समझें कि बाल-गीता से केवल आपके बालक को ही लाभ होगा, और आप कोरे के कोरे रह जायेंगे। नहीं, यह बात नहीं है। आपको भी इससे अकथनीय लाभ होगा। बाल-गीता के अनुसार अमल

बालक की खामियों और बुराइयों के लिये अपने को दोषी समझें।

बालक की अद्भुत शक्तियों में विश्वास रक्खें।

बालक की उचित माँगों को पूरा करें।

बालक की शिक्षा पालने में ही शुरू करें।

बालक के लिये बाल-पुस्तकालय व संग्रहालय बनाएँ।

बालक के साथ बालक बन कर मित्र की तरह रहें।

बालक के अधिकारों को स्वीकार करें।

बालक के साथ किये गये वादों को पूरा करें।

बालक के सामने सदा प्रसन्न और हँस-मुख रहें।

बालक के सवालों का सही और स्पष्ट जवाब दें।

बालक के सामने नमूना बन कर रहें।

बालक से सम्बन्ध रखने वाले कामों में उसकी राय अवश्य लें।

बालक से जो कुछ कराना हो, उसका हेतु व कारण अच्छी तरह समझा दें।

( २ )

बालक को पराधीन, परावलम्बी व परतन्त्र न बनाएँ।

बालक को नौकरों का गुलाम न बनाएँ।

बालक को लल्लू, बच्चा, खचेड़ और छुट्टा आदि नाम से कभी न बुलाएँ

बालक को हेचपोच, अक्ल का कच्चा और पापी न समझें।

बालक को किसी भी प्रकार की सजा या लालच न दें।

बालक को हार-जीत के जाल में कभी न फँसाएँ।

बालक को धर्म-नीति का उपदेश न दें।

बालक को निराशापूर्ण कविताएँ और कहानियाँ न सुनाएँ।

बालक को व्यर्थ के नियमों और बन्धनों में न जकड़ें।

करने से आप मताग्रह के जहर को, जिसने आपके जीवन को इतना विषैला बना रखा है, अपने अन्दर से निकालने का प्रयत्न करेंगे, अपने विचार दूसरों पर लादने की अनधिकार चेष्टा न करेंगे। दूसरों की कमियों और दोषों को देखने के बजाय आप अपनी ही कमियों और दोषों को देखना सीखेंगे। दूसरों की आँख का तिल ताड़ बन कर आपकी आँखों में न खटकेगा। आपके घर का वातावरण सुन्दर बन जाएगा।

## बाल गीता

लीजिये, अब बाल-गीता को ध्यान से पढ़िये, इसके एक-एक शब्द पर मनन कीजिए और अमल करके इसकी सचाई को आजमा कर देखिये।

( १ )

बालक को स्वतन्त्र करें, निर्भय करें।
बालक को बालक की दृष्टि से देखें।
बालक को अपने सब काम आप करने दें।
बालक को अपनी रुचि के अनुसार चलने दें।
बालक को खूब सैर कराएँ, दृश्य दिखायें।
बालक को साफ-सुथरा रहना सिखाएँ।
बालक को अपनी भूलें और गलतियाँ स्वयं दूर करने दें।
बालक को खतरों का मुकाबला करने दें।
बालक को अपनी समस्याएँ खुद हल करने दें।
बालक को अपने निर्णय खुद करने दें।
बालक को अपना पथ-प्रदर्शक समझें।
बालक का सुन्दर नाम रक्खें और सदा उसी नाम से बुलाएँ।
बालक का ख्याल सब से पहले करें।

बालक को सर्दी, गर्मी, भूत, प्रेत का डर न दिखाएँ।
बालक को हौवा, कौवा, बिल्ली, कुत्ते से न डराएँ।
बालक को अश्लील खेल-तमाशों और बरातों में न ले जाएँ।
बालक का दूसरे बालकों से मुकाबला न करें।
बालक का कभी मजाक न उड़ाएँ, दिल न दुखाएँ।
बालक की उसके सामने या पीठ पीछे निन्दा-स्तुति न करें।
बालक की भूलों और कमियों को देखकर हँसी न उड़ाएँ।
बालक को निर्दोष क्रियाओं को पाप और घृणा की दृष्टि से न देखें।
बालक की खुशामद न करें, उसकी अनुचित बात को न मानें।
बालक के सामने लड़ाई झगड़ा न करें, गाली-गलौज न दें।
बालक के सामने अपने दुःखों और चिन्ताओं का प्रदर्शन न करें।
बालक के मालिक, सरदार या डिक्टेटर न बनें।
बालक के साथ चिल्ला कर न बोलें, दुर्व्यवहार न करें।
बालक के साथ झूठा लाड़-प्यार न करें, धोखा न करें।
बालक के गिर पड़ने या बीमार होने पर परेशान न हों।
बालक के लिये खर्च करने में आनाकानी न करें।
बालक के काम और खेल में जरा भी विघ्न न डालें।
बालक में अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का बीज न बोएँ।
बालक में जाति-पांति और छुआ-छूत का जहर न भरें।
बालक में काले-गोरे, लड़के-लड़की, अच्छे-बुरे का भेद न करें।
बालक पर अपनी धारणाएँ, इच्छाएँ और विचार न लादें।
बालक पर रौब और धाक न जमाएँ।
बालक पर नाराज और रुष्ट न हों।

———



बालक मोतियों की माला बना रहा है



बालक घास खोद रहे हैं

# माता-पिता व शिक्षकों के लिये पुस्तकें व पत्र

—::*—

१—आपका मुन्ना भाग ३ ( आत्माराम एण्ड सन्स, पुस्तक विक्रेता, काश्मीरी दरवाजा, दिल्ली ६ )

२—बालक का भाव-विकास " " "

३—माता मोंटीसोरी, उनके विचार और पद्धति " "

४—सब बुराइयों की माँ—सजा " " "

५—देश देश के बच्चे " " "

६—हमारे बच्चे ( दी नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ९६ दरियागंज, दिल्ली )

७—उलझे बच्चे " " "

८—बच्चे के प्रारम्भिक वर्ष " " "

९—बच्चा मेरा शिक्षक ( राजकमल प्रकाशन, दिल्ली )

१०—माँ-मुन्ना ( मलहोत्रा ब्रदर्स, नई सड़क, दिल्ली )

११—बच्चों की आदतों का विकास ( विद्या मन्दिर, कनाट सरकस, नई दिल्ली )

१२—बाल-विकास और उसकी समस्याएँ ( जगत शंखधर, पो० बॉ० २२, वाराणसी १ )

१३—मोन्टीसोरी शिक्षा-पद्धति ( हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी )

१४—बाल-मनोविकास ( नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, चौक, वाराणसी )

१५—घर में बेसिक शिक्षा " " "

१६—बेसिक शाला में बालक (नन्दकिशोर एन्ड ब्रदर्स चौक, वाराणसी )
१७—बालक और बेसिक शिक्षा " " "
१८—बेसिक शिक्षा " " "
१९—माता-पिताओं से ( सर्व-सेवा-संघ, वाराणसी )
२०—बालक सीखता कैसे है ? " "
२१—शिक्षण-विचार " "
२२—बाल मनोविकास की कहानियाँ ( रामनारायण लाल, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता इलाहाबाद )
२३—शिक्षा का रोग और उसका इलाज " " "
२४—बच्चों की कुछ समस्याएँ ( विद्या-भवन, उदयपुर (राजस्थान)
२५—शिक्षा ( हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कर्यालय, बम्बई )
२६—बच्चों को सुधारने के उपाय " " "
२७—हिन्दी शिक्षण पत्रिका की पुरानी फाइलें, ( ११८, हिन्दी कॉलोनी, दादर, बम्बई १४ )
२८—बालहित की पुरानी फाइलें ( विद्या-भवन, उदयपुर, ( राजस्थान )

———.

## BOOKS FOR PARENTS AND TEACHERS IN ENGLISH.

—:o:—

| | Name of the book | To be had of. |
|---|---|---|
| 1. | Emotional problems of the child. | M/S Orient Longmans Ltd., Asaf Ali Road, New-Delhi. |
| 2. | The young child and his parents. | " |
| 3. | The Child is right. | " |
| 4. | Problem Children. | M/S Atmaram & sons, Kashmiri gate, Delhi-6. |
| 5. | The Secret of Childhood. | Theosophical Publishing House, Adyar, Madras. |
| 6. | The absorbent mind. | " |
| 7. | The Discovery of the child. | " |
| 8. | Education & Significance of Life. | " |
| 9. | Parents questions. | |
| 10. | Troubles of Parents and Children. | |
| 11. | The Nursery years. | |
| 12. | Childhood and after. | |
| 13. | Everyday Problem of Everyday child. | |
| 14. | Talks to Parents and Teachers. | |
| 15. | Common Sense and the Child. | |
| 16. | Education of the Wholeman. | |
| 17. | School and the child. | |

18. The Problem child.
19. The Problem Parent.
20. The Problem Family.
21. The Free child.
22. On Education.
23. Children in Soviet Russia.
24. Purposeful Activities. M/S Happy Schools Society, Daryaganj Road, Delhi-7.
25. Sensorial Activities. ”
26. Essays on child Education. Prof. K. U. Bhambhra, 6, Malviya Road, George Town, Allahabad.



N. B.— Books from No. 9 to 23 can be had from M/S D. B. Taraporewala, Fort, Bombay-1 or any other big bookseller.

27. Around the child. An annual journal. 54, Hazra Road, Calcutta-19

—:o:—

## बाल-विकास के लिये साधन-सामग्री मँगवाने का पता

1. Jeychand Talakshi & Sons,
   146 Hornby Road, fort, Bombay-1
2. The Nursery Equipment Co.
   P. B. No. 1419 Kasmere Gate, Delhi-6.
3. Happy Schools Society,
   Daryaganj, Delhi-7